चाय
का
रंग

लेखक की रचनाएं

लोकगीत

गिद्दा (१९३६) : पंजाबी
दीवा बले सारी रात) १९४१) : पंजाबी
मैं हूँ ख़ानाबदोश (१९४१) : उर्दू
गाये जा हिन्दुस्तान (१९४६) : उर्दू
Meet My People (१९४६)
धरती गाती है (१९४८)
धीरे बहो गंगा (१९४८)
बेला फूले आधी रात (१९४८)

कविता

धरती दीयां वाजां (१९४१) : पंजाबी
बन्दनवार (१९४९)

कहानियां

कुंग पोश (१९४१) : पंजाबी
नये देवता (१९४३) : उर्दू
और बांसुरी बजती रही (१९४६) : उर्दू
चट्टान से पूछ लो (१९४८)

निबन्ध

एक युग : एक प्रतीक (१९४८)
रेखाएं बोल उठीं (१९४९)

सूची

आमुख

यह अणु बम का युग है। जिसे देखो आज अपने वार्तालाप का ताल अणु बम पर ही तोड़ता है। किसी रेस्टोराँ में चले जाइए, किसी काफी हाउस में जाकर देखिए, कोलाहल के आरकेस्ट्रा में अपने-अपने स्वर छेड़नेवालों की बातें सुनिए, आप देखेंगे कि घूम फिर कर बात अणु बम पर ही ख़त्म होती है। जिन्होंने कभी जापान देखा नहीं, वे भी हिरोशिमा और नागासाकी की गाथा ले बैठते हैं। जैसे वे अणु बम द्वारा इन नगरों का संहार होने से पूर्व और पश्चात् वहां का निरीक्षण कर आये हों। जिसे देखो सर्व-संहारक अणु बम की बात यों आरम्भ करता है, जैसे यह भी किसी पुरातन परी-कथा का दैत्य हो। सचमुच आज सर्वत्र वही कहानी उभरती नज़र आती है, जिसमें किसी दैत्य ने एक नगर के निवासियों से यह समझौता कर लिया था कि उसका ग्रास बनने के लिए प्रतिदिन एक मनुष्य पहुंच जाया करेगा। चाय या काफी का प्याला थामे लोग एक दूसरे की ओर भयभीत-से देखने लगते हैं, जैसे यह आधुनिक युग का दैत्य कल ही स्वयं उनके नगर में पहुँच कर सबके सब नगर-वासियों को अपना ग्रास बना लेगा। वे सोचते हैं कि शायद अणु बम का दैत्य परी-कथा के दैत्य के समान किसी समझौते में विश्वास नहीं रखता। बस यही सोचकर चाय या काफी पीते हुए मित्रों और ेयसियों के कहकहे दब जाते हैं, उनकी मुस्कराहटें सिकुड़ जाती हैं।

शायद कोई कहे कि मैंने ख्वाह-म-ख्वाह परी-कथा के दैत्य को यहाँ ला घसीटा। पर सच तो यह है कि इस युग की आधुनिकतम कहानी ही नहीं, आनेवाली पीढ़ियों की कहानी भी, जहाँ कहीं जीवन का स्पर्श करेगी, वहीं संहार का कोई प्रतीक उभरता नज़र आयेगा। लाख शान्ति-सम्मेलन बुलाये जायँ, मनुष्य आज भी सृजन के स्थान पर संहार की ओर ही अग्रसर हो रहा है। शायद कोई कहे कि समूची मानवता को दोष देना तो ठीक नहीं, यह तो कुछ गिने-चुने लोगों की प्रवृत्ति ही हो सकती है कि वे संसार को संहार के मार्ग पर ले जायँ।

ख़ैर, छोड़िए यह सब संहार-चर्चा। इतना तो स्पष्ट है कि जहाँ तक कहानी-कला का सम्बन्ध है, अणु बम के आविष्कारक और प्रयोक्ता ने आज के कहानी-लेखक को यह चेतावनी अवश्य दी है कि वह पुरानी लकीर का फकीर रहने की बजाय नई शैली और नये दृष्टिकोण को अपनाये। वस्तुतः आज यह आवश्यक हो गया है कि कहानी-लेखक सृजन और संहार के संघर्ष पर फिर से विचार करे। पुरातन परी-कथाओं के दैत्य जहाँ मनुष्य-भक्षण करते थे वहाँ उनमें इतनी शक्ति भी तो होती थी कि चाहें तो पहाड़ को हिला दें, धरती को कँपा दें या ऐसे ही और बड़े काम कर दिखायें जो साधारण मनुष्य के बल-बूते से बाहर होते थे। और आज हम देखते हैं कि वही अणु-शक्ति जो अणु बम के रूप में सर्व-संहारक सिद्ध हुई है, सृजन के कार्य में भी सहायक सिद्ध हो सकती है।

यह भी कहा जाता है कि अणु बम के आविष्कार ने अब तक के अन्य सभी अस्त्रों को बेकार बना दिया है। फिर भी यह कहना तो कठिन है कि जहाँ एक घूँसे या चपत से ही काम चल सकता है वहाँ भी भावी युग का मानव अणु बम का प्रयोग किया करेगा। घूँसा और चपत का इतिहास तो सचमुच बहुत पुराना है। जब अभी तीर-तलवार का आविष्कार नहीं हुआ था—बन्दूक और तोप तो ख़ैर बहुत बाद की चीजें हैं—तब यही घूँसा और चपत ही मनुष्य के सबसे

बड़े अस्त्र थे। पर जहाँ तक मनुष्य के मन का सम्बन्ध है उस पर तो एक भारी-भरकम गाली ही नहीं, एक सूक्ष्म-सी व्यंग्योक्ति भी संसार के सबसे बड़े अस्त्र से कहीं अधिक चोट कर सकती है। आधुनिक कहानी-लेखक के लिए मानव मन की इसी चोट का चित्रण ही सबसे अधिक आवश्यक हो गया है।

अभी उस दिन एक सरदारजी को मैंने अपनी जीप से दो मरे हुए हिरन उतारते देखा। इस जीप का ड्राइवर खून से लथपथ था। मैंने झाँककर देखा कि जीप में भी खून ही खून नज़र आ रहा है। एक हिरन को तो एक सरदारजी पहले ही घर की ओर ले जा चुके थे, अब दूसरा आदमी दूसरे हिरन को जीप से बाहर निकालने में संलग्न था। मैंने यह सब दृश्य देखा और जीप के भीतर बैठे हुए तीसरे सरदारजी से कहा—"आप ने एक सुन्दर आदमी को मार डाला।"

सरदारजी भौचक्के-से होकर बोले—"आदमी को ?"

"हाँ, आदमी को।" मैंने अपनी बात फिर दोहराई।

सरदारजी अपनी वीरता का बखान करते हुए कह उठे—"मैंने बहुत क़रीब से राइफल चलाई थी।"

खैर, मैं आगे बढ़ गया। हिरन की गरदन के समीप इतना गहरा घाव देखकर मेरे मन पर उससे भी कहीं गहरी चोट लगी। अब यह सब अपने-अपने मन की बात है। सरदारजी तो कहानी-लेखक नहीं थे, वे तो यही सोच रहे थे कि आज घर में हिरन का मांस पकेगा, और मैं यह सोचकर रह गया कि क्या मानव अनन्त काल तक पशु ही बना रहेगा। अब मैं चाहूँ तो इसी घटना को लेकर एक कहानी लिख डालूँ। हाँ, मेरा दृष्टिकोण यह तो रहेगा कि इससे पाठक का मनोरंजन मात्र ही न हो, उसे सृजन और संहार की विश्वव्यापी समस्या पर भी फिर से विचार करने का अवसर प्राप्त हो। खैर, अभी से इस कहानी की क्यों फ़िक्र करूँ, अभी तो वह मन के गर्भ में ही सरक रही है।

'चाय का रंग' और इस संग्रह की सरी कहानियाँ लिखते समय

मैंने मन की बात को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया है। इनमें कहीं आत्म-श्रद्ध गांभीर्य की पुट नज़र आयेगी तो कहीं मित्रों की बातचीत का चटखारा मिलेगा। कहीं कथावस्तु के रूप में केवल इतनी-सी मान्यता से काम चला लिया गया है कि स्त्री और पुरुष के भेदबोध ने अनन्त काल से जीवन की एकाकारता के सपाट दृश्य के स्थान पर उँचाई-निचाई, घुमाव और गोलाई से सम्पन्न बना दिया है। कथानक को मैंने इतना आवश्यक नहीं समझा। शायद कोई कहे कि कथानक के बिना कहानी बन ही नहीं सकती। पर कहानी के सृजन में तो मनोभाव का उतार-चढ़ाव किसी बड़े से बड़े कथानक से भी टक्कर ले सकता है।

इस संग्रह की प्रमुख कहानी है 'चाय का रंग'। इसकी पृष्ठभूमि में आसाम का एक चित्र प्रस्तुत किया गया है। पर यदि पूरी कहानी पढ़ जाने के पश्चात् पाठक के मन पर यह बात अंकित हो सके कि यह आसाम की कहानी नहीं, मानव जीवन की कहानी है, तो मैं इसे अपनी सफलता समझूँगा। 'आटोग्राफ बुक' की कथावस्तु शान्ति-निकेतन की एक सच्ची घटना से ली गई है, पर इसके अनेक तार मानव भावनाओं पर अवलम्बित हैं, और पाठक कह सकता है कि इस घटना का सम्बन्ध तो किसी भी स्थान से हो सकता है। 'नये देवता' में एक लेखक का व्यक्तित्व उभरता है, इसका व्यंग्य भी एकदेशीय नहीं है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की रचनाओं में वास्तविक चित्रण के साथ-साथ मानवता की गहरी पुट भी आवश्यक होती है, जिससे इनकी भावभूमि को सार्वभौम बनाया जा सके। 'इकन्नी' लेखक के निजी जीवन का एक पृष्ठ है; हाँ, ऐसी कहानी का जन्म एक यात्री के जीवन में भी हर रोज़ नहीं हो सकता।

'टिकुली खो गई' का नायक शायद पाठक को भी कहीं किसी सड़क पर मिल जाय। ग्राम से नगर में आने पर वह हड़बड़ाया-सा इधर-उधर घूम रहा है, उसे सहानुभूति चाहिये। 'लीलारूप' का

नायक मेजर आनन्द भी केवल कल्पना की वस्तु नहीं; उसे भी मैंने जीवन की सड़क पर खड़े देखा और ज्यों-ज्यों हमारा परिचय बढ़ा मेरे हृदय में उसे जानने की इच्छा प्रबल होती गई। पर मेजर आनन्द को पूरी तरह जान सकना मेरे बस का रोग नहीं। वह मेरे लिये एक बहुत बड़ा रहस्य है। हाँ, मैंने उसके मन का एक वातायन खोलकर जो देखा उसे 'लीलारूप' में अंकित कर दिया। 'अन्नदेवता' में गोंड जीवन का एक मुंह-बोलता चित्र प्रस्तुत किया गया है: हलदी का यह विचार नवोत्थान का प्रतीक है कि अन्नदेवता, जो रेल की लाइन जंगल में पहुँचने पर पहली ही गाड़ी से टिकट कटाकर बम्बई चला गया था, कभी तो अवश्य उदास हो जायगा और शायद वह फिर जंगल में लौट आयगा।

इस संग्रह की एक और कहानी है 'शबनमा'। मेरा आग्रह है कि 'शबनमा' के स्त्री-चरित्र पर विचार करते हुए स्त्री और पुरुष की विषमता को सामने रखा जाय। 'लावारिस' और 'दोराहा' बंगाल के अकाल के दिनों में लिखी गई थीं। 'ब्रह्मचारी' में काश्मीर की पृष्ठभूमि है। 'स्कैन्डल प्वाइंट' का केन्द्रबिन्दु है शिमला की दो सड़कों का संगम। पर मेरा यत्न यही रहा है कि इसमें भी एकदेशीयता का मुद्रादोष न आ जाय। लाख अणु बम का भय हो, स्कैण्डल प्वाइंट तो सर्वत्र मिलेंगे जहाँ खड़े होकर लोग दुनिया भर को रगेदने लगते हैं, जहाँ परिचितों और अपरिचितों के प्रणय और विवाह पर फबतियाँ कसी जाती हैं, जहाँ जाने अनजाने स्वप्नों के महल बनते और ढह पड़ते हैं......

१०० बेयर्ड रोड, नई दिल्ली। देवेन्द्र सत्यार्थी

२१ नवम्बर, १९४९

चाय का रंग

जैसे ही मैं अपने आसामी मित्र से भेंट करने के लिये पहुँचा, मैंने देखा कि बिजली के पंखे की तेज हवा में उसकी अण्डी की चादर का अंचल अबाबील के परों के समान फड़फड़ा रहा है। उसने उठकर हाथ मिलाया और मुझे अपने साथवाले सोफे पर बैठने का संकेत किया। फिर नौकर को बुलाकर कहा—"दो चाय, झटपट।"

मैंने कहा—"आप विधान परिषद् में सम्मिलित होने आये हैं और सरकार ने आपके निवास का अच्छा प्रबन्ध कर दिया है, नहीं तो यह कैसे हो सकता था कि आप मेरे यहाँ ठहरना पसन्द न करते।"

"मैं तो राजधानी का मेहमान हूँ," उसने हंसकर कहा, "और इस दृष्टि से आपका भी उतना ही मेहमान हूँ।"

थोड़ी देर बाद नौकर ने चाय का सामान मेज पर ला रखा। मेरे मित्र ने प्याली में चाय का पानी उँडेलते हुए पूछ लिया—"आप भी तो तेज़ चाय पसन्द करते होंगे?"

मैंने कहा—"चलिये, आज तेज़ ही सही।"

वह बोला—"ज़रूरत इस बात की है कि लोगों को अच्छी चाय की पहचान कराई जाय। जैसे-तैसे चाय का लाल पानी मिल जाय, लोग तो बस इसीसे खुश हो जाते हैं। आज इस चाय का ज़ायका देखिये और कहिये कैसी लगी।"

चाय का घूंट गले से नीचे उतारते हुए मैंने कहा—"यह ख़ास आसाम की चाय मालूम होती है।"

उसकी आंखें चमक उठीं। बोला—"दुर्भाग्य से हमारे देश की चाय कम्पनियाँ विभिन्न क़िस्मों की चाय की पत्तियाँ मिला कर बेचती हैं। यहीं से सारी गड़बड़ शुरू होती है। मेरा विचार है कि यदि चाय की किस्में अलग-अलग बेची जाया करें तो बहुत अच्छा हो।"

उसके चेहरे पर झुर्रियों का जाल नज़र आ रहा था जैसे मोरनी के अण्डे पर धब्बे उभर आयें। पूरे अठारह वर्ष पूर्व जब मैं आसाम गया था तो गोहाटी में उसी के पास ठहरा था, जहाँ वह ब्रह्मपुत्र के किनारे एक सुन्दर कोठी में रहता था। रात के साढ़े ग्यारह बजे मैं वहाँ पहुँचा तो मुझे देखकर उसे कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ था। दार्जिलिंग से बरुआ महोदय की चिट्ठी लेकर मैं उसके पास पहुँचा था। जब वह यह चिट्ठी पढ़ रहा था तो मैंने हलकी-सी आवाज़ में कह दिया—देखिये जी, मेरे पास यह चिट्ठी न होती, तो भी मुझे आपके यहां आतिथ्य मिल ही जाता। बस वह इतने पर खुश हो गया और उसने ऊपर की मंज़िल में मुझे उसी कमरे में ठहराया जहाँ कभी महात्मा गांधी ठहरे थे। यह पता चलने पर मैं बहुत घबराया। कहाँ स्वतन्त्रता का सेनानी एक महापुरुष और कहाँ एक साधारण ख़ानाबदोश लेखक। वहीं मेरे लिये भोजन आ गया, फल और चाय भी। वह चाय कितनी लज़ीज़ थी। आज की चाय ने फिर से उस चाय की याद दिला दी।

दायें घुटने और पिण्डली को हाथ से सहलाते हुए वह बोला—"अब तो खैर दर्द बहुत कम हो गया है, तीन दिन और तीन रातें तो मुझे पलंग पर पड़े रहना पड़ा।"

मैंने कहा—"उस दिन आप हमारे यहाँ आये थे तो बिल्कुल अच्छे थे।"

"आपने नीबू की शिकंजबीन पिला दी, वह नाक-भौं सिकोड़ते हुए कह उठा, "बस उसीसे गड़बड़ हो गई।"

मैंने क्षमा-याचना करते हुए कहा—"ग़लती हो गई। अब आप चाय पर ज़ोर दीजिये। शायद दिल्ली का पानी आपको मुआफ़िक नहीं आया। आसाम से आनेवालों को तो चाय की मदद लेनी ही चाहिये।"

वह बोला—"वैसे नीबू मैं भी पसन्द करता हूं, पर नीबू की शिकंजबीन मुझे मुआफ़िक नहीं आती ?"

मैंने हंसकर कहा—"जिसकी घुट्टी में नीबू की शिकंजबीन की बजाय गरम-गरम चाय पड़ी हुई हो उसे नीबू की शिकंजबीन कैसे मुआफिक आ सकती है।"

वह बराबर अपनी टांग को सहलाता रहा। बोला—"थोड़ा दर्द अभी बाकी है।"

"ऐसे ही जैसे हिन्दुस्तान आज़ाद होगया, पर पिछली गुलामी का हलका-सा दर्द अभी बाकी है," मैंने हंसकर जवाब दिया, "अब देखना यही है कि यह दर्द कब दूर होता है।"

"नया विधान बन जाने दीजिये," वह कह उठा, "इसके लागू होते ही सब आप से आप ठीक हो जायगा।"

यह आप से आप ठीक हो जाने वाली बात मेरी समझ में न आई। मैं पूछना चाहता था कि क्या चाय के पौधे भी आप से आप पैदा हो जाते हैं, और किसी के हाथ लगाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती और चाय की पत्तियाँ भी आप से आप डिब्बों में बन्द

होकर जगह-जगह जा पहुँचती हैं।

न जाने क्या सोचकर मैं बोला—"मैं तो समझता हूँ कि वह दिन दूर नहीं जब महात्मा गाँधी की वे सब बातें सच होकर रहेंगी जो उन्होंने ब्रह्मपुत्र की लहरों के सामने आसाम की जनता से कही थीं। उन्होंने कहा था—"स्वराज्य के साथ गरीबी आप से आप दूर हो जायगी, स्वराज्य के साथ भारतमाता का झुका हुआ सिर आप से आप ऊँचा उठ जायेगा।"

मैंने कहा—"इसके लिए हमें काम जरूर करना होगा।"

वह बराबर अपनी टाँग को सहलाता रहा। ऐसा भी क्या दर्द है, मैं पूछना चाहता था। उसने कहा—"बुढ़ापा आ रहा है। यह दर्द उसी की ख़बर लाया है।'

मैंने हंसकर कहा—"अभी बुढ़ापे का नाम मत लीजिये। चाय ठंडी हो रही है। क्यों न चाय के साथ इन्साफ़ किया जाय?"

उसने फिर से दोनों प्यालियों में चाय का पानी उँडेला। दूध और चीनी डालने के बाद चाय की प्याली मेरे हाथ में थमाते हुए उसने कहा—"मैं खुश हूँ कि आसाम की चाय आपको पसन्द आ गई।"

वह देर तक चाय की प्रशंसा करता रहा। मैंने बात का रुख़ पलटते हुए कहा—"यदि मैं भूल नहीं करता तो आज से अठारह वर्ष पहले मैंने आपके शरीर पर अण्डी की यही चादर देखी थी।"

वह बोला—"आसाम की अण्डी की यही खूबी है कि यह जितनी पुरानी होती जाती है, इसका रंग उतना ही निखरता जाता है। यह चादर मैं हमेशा अपने साथ रखता हूँ। जिस वर्ष आप आसाम आये थे उससे पाँच वर्ष पहले से यह चादर मेरे पास रही है।"

"तो इस चादर की उमर तेईस वर्ष की हो गई है?"

"जी, हाँ।"

"तो क्या मैं यह समझ लूं कि क्या आप दो वर्ष बाद इस चादर की रजत जायन्ती मनायेंगे ? कहिये उस दिन अपने सब दोस्तों को चाय के लिये तो बुलायेंगे न ?"

हम देर तक हंसते रहे। मैंने कहा—"इन्सान भी ताश के पत्तों की तरह हमेशा बँटते रहते हैं, पर जब कभी दो जाने-पहचाने पत्ते समीप आ जाते हैं तो चाय की प्यालियां आप से आप समीप सरक आती हैं।'

वह बोला—"मैं ताश का पत्ता ही सही। ताश के पत्ते को चाय की प्याली और अएडी की चादर से प्रेम हो गया। आसाम से चलते समय मैं क्या जानता था कि यहाँ आप से भेंट हो जायगी। नहीं तो मैं अएडी की एक चादर आपके लिए ले आता। हाँ, अपने बगीचे की चाय का एक आध पैकट तो ज़रूर दे सकता हूँ।"

"उसके लिये पहले से धन्यवाद। हाँ तो आज से अठारह वर्ष पूर्व मुझे आपके घर पर आतिथ्य प्राप्त हुआ था। वह भी उसी कमरे में जहाँ कभी भारत के सबसे बड़े महापुरुष को ठहराया गया था।"

वह जरा संभला—"उस कमरे को आत्मकथा लिखने का अवसर मिले तो उसमें बहुत से चेहरे उभरेंगे। उनमें ऐसे लोग भी होंगे जिन्हें चाय से घृणा थी, और ऐसे भी जो सौ काम छोड़कर चाय की प्याली में ही तूफान उठाने को अपने जीवन का सबसे बड़ा आदर्श मानते थे।"

मैंने कहा—"आप आत्मकथा लिखें तो उस कमरे की आत्म-कथा आप से आप आ जायेगी।"

उसकी आँखें चमक उठी। अठारह वर्ष पूर्व जब मैं उसके घर पर ठहरा था तो उसे यह आशा न थी कि मैं अपने संस्मरणों

में आसाम के चित्र को इतना स्थान दे सकूंगा। उसने सोचा था कि एक यात्री है। न जाने कैसे भूला भटका इधर आ निकला है। आसाम से लौटते ही आसाम को भूल जायगा और गोहाटी के अपने मेज़बान को कभी भूलकर भी याद न करेगा। अब अगर वह कहता कि आसाम का चित्र प्रस्तुत कीजिये तो मैं एक एक रेखा को उभारकर दिखा सकता था। ऊपर से मैंने यही कहा—

"आसाम सदा मेरे स्वप्नों को छूता रहा है।"

उसने हंसकर पूछ लिया—"इसका प्रमाण ?"

मैंने झट एक पुस्तक निकालकर उसके हाथ में देते हुए कहा—"इसमें आसामी गीतों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इसमें आपकी भी चर्चा है।"

वह देर तक इस पुस्तक के पृष्ठ पलटता रहा। बोला—"आसाम बहुत बदल गया है, पर गीतों में आसाम का दिल उसी तरह धड़कता है।"

मैंने बढ़ावा देते हुए कहा—"दार्जलिंग के एक गीत में किसी चाय-मजदूर ने अपनी प्रेयसी की उपमा चाय की पत्ती से दी है। नीलगिरी के एक गीत में भी चाय और प्रेम की चर्चा एक साथ की गई है। लंका के एक गीत में चाय के जन्म से लेकर प्याली में आने तक की पूरी गाथा प्रस्तुत कर दी गई है। पर आसाम से मुझे चाय के गीत न मिल सके थे। खैर, यह तो मैं मान ही नहीं सकता कि आसाम में चाय के गीत नहीं होंगे। हाँ, मुझे इस बात का बहुत अफ़सोस रहा कि मैं चाय के बड़े-बड़े बगीचे न देख सका।"

वह बराबर उस पुस्तक के पृष्ठ पलटता रहा। फिर वह गम्भीर होकर बोला—"आपको याद होगा, अपने चाय-बगीचे में तो मैं आपको ले ही गया था। यह और बात है कि वह बगीचा बहुत बड़ा नहीं है।"

मैंने उछल कर कहा—"आपके चाय-बगीचे के मजदूरों ने तो मुझे साधु बाबा समझ लिया था। एक स्त्री का बच्चा बीमार था। वह उसको मेरे सामने उठा लाई थी। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए मैं कह उठा था—तेरा बच्चा अच्छा हो जायगा, माई! खुशी से उसकी आँखें चमक उठी थीं। मुझे सब याद है। आज भी मेरे मन में उस स्त्री का चित्र उभरता है, उसके बच्चे का चित्र भी। अब तो वह औरत वृद्धा हो गई होगी। उसका बच्चा भी अब मजदूरी करता होगा। मुझे अब भी याद है कि एक बूढ़े मजदुर ने पूछ लिया था—सुराज कब आयेगा, बाबा?...'मैंने कहा था—बहुत जल्द आयेगा स्वराज्य। तुम्हें बहुत इन्तजार न करना पड़ेगा...सचमुच उस बूढ़े चाय-मजदूर ने यही सोचा होगा कि स्वराज्य भी कोई रेलगाड़ी है जिसकी प्रतीक्षा की जा रही है या फिर कोई स्टीमर है, जिसके इन्तजार में घाट पर खड़े हुए लोगों ने आँखें बिछा रखी हैं...हाँ, तो कहिये, जब आसाम में स्वराज्य आया तो चाय-मजदूरों ने उसका कैसे स्वागत किया?"

उसने कहा—"आपने भी कहाँ जाकर तान तोड़ी। यह तो आप जानते होंगे कि आसाम में चौदह सौ चाय-बगीचे हैं, जिनके चौरासी प्रतिशत यूरोपियन मालिक हैं।"

मैंने हंसकर कहा—"यह चौदह और चौरासी का अनुपात भी खूब है।"

वह बोला—"सुनिये तो। चौदह सौ चाय-बगीचों में कोई सात लाख आदमी काम करते हैं।"

मैंने हंस कर कहा—"यहाँ फिर चौदह और सात का अनुपात कायम है।"

उसने बताया कि चाय-बगीचों के सात लाख आदमियों में कोई चौदह हजार आदमी पढ़ना-लिखना जानते हैं और ये वे लोग हैं जो बगीचों में क्लर्की और बाबूगिरी करते हैं। मैं हंसी

को न रोक सका, क्योंकि यहाँ फिर सात और चौदह का अनुपात मौजूद था। उसने यह भी बताया कि चाय-बगीचों में शिक्षा का जो थोड़ा बहुत प्रबन्ध है भी, वह सब चाय-बगीचों के मालिकों के हाथ में है। मैंने यही राय दी कि अब युग बदल गया है। अब तो चाय-बगीचों में शिक्षा का कार्य सरकार के प्रबन्ध में आ जाना चाहिये। यह और बात है कि उसका खर्च चाय-बगीचों के मालिकों पर डाला जाय।

वह बोला—"पहले हर पुरुष को चार आने और स्त्री को तीन आने रोजाना मजदूरी मिलती थी। अब पिछले साल से मजदूरी बढ़ाकर पुरुष के लिये साढ़े तेरह आने और स्त्री के लिये साढ़े बारह आने कर दी गई है।"

मैंने पूछ लिया—"तो स्वराज्य मिलने के एक वर्ष बाद भी चाय-मजदूर को पहली मजदूरी पर ही काम करना पड़ा?"

"जी, हाँ।"

"पर एक बात है—"

"वह क्या?"

"यही कि जहाँ पुरुष को साढ़े तेरह आने रोजाना दिये जाते हैं, वहाँ चौदह आने क्यों नहीं दिया जा सकते? भले ही स्त्री की मजदूरी साढ़े तेरह आने से घटाकर सात आने ही करनी पड़े। क्योंकि स्त्री तो पुरुष की अर्द्धांगिनी होती है। इससे एक और भी लाभ होगा। वह यह कि यहाँ भी चौदह और सात का अनुपात कायम हो जायेगा।"

"मजदूर तो इसे कभी नहीं मानेंगे।"

"तो फिर यों होना चाहिये कि पुरुष और स्त्री की मजदूरी बराबर कर दी जाय—चौदह अर्थात् दोनों को चौदह-चौदह आने दिये जायँ। चौदह-का अनुपात और भी अच्छा रहेगा...यह बात तोमेरी समझ में बिल्कुल बाहर है कि स्त्री और पुरुष की मजदूरी

में एक आने का अन्तर क्यों रखा गया।"

पता चला कि चाय-बगीचों की ओर से चाय-मजदूरों को बहुत-सी सुविधाएँ दी जाती हैं। घर उन्हें मुफ्त मिलता है। दवा और डाक्टरी पर कोई खर्च नहीं आता। रुपये का चार सेर चावल मजदूरों को हर अवस्था में मिलता है, चाहे बाज़ार में चावल का कुछ भी भाव हो। यह प्रबन्ध किया गया है कि सरसों का तेल छः आने सेर, नमक चार आने सेर, चीनी आठ आने सेर मिलती रहे। इसके अतिरिक्त कपड़ा कन्ट्रोल भाव पर मिलता है। यह और बात है कि आवश्यकता के अनुसार कपड़ा नहीं मिल पाता।

मैंने हँसकर कहा—"बेचारे चाय-मजदूरों को अण्डी की चादरें कहाँ मिलती होंगी।"

वह बोला—"अण्डी की चादरें शायद वे पसन्द भी नहीं करेंगे। उनकी सब कमाई तो शराब पर उड़ जाती है। अब उनकी मजदूरी बढ़ाने का यही अर्थ होगा कि वे और भी ज्यादा शराब पीयेंगे।"

मैंने कहा—"पर अब तो शराबबन्दी लागू की जा रही है।"

वह बोला—"इतना याद रखिये कि यूरोपियन मालिकों के चाय-बगीचों में तो हड़ताल हो जाती थी, पर देसी मालिकों के बगीचों में कोई हड़ताल का नाम भी नहीं जानता।"

मैंने कहा—"फिर तो देसी मालिकों की बहुत प्रशंसा की जानी चाहिये।"

वह बोला—"बड़े बगीचों के मालिक सब यूरोपियन हैं। वहाँ मजदूरों के साथ मालिकों का सीधा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। पर देसी मालिक सीधे सम्बन्ध पर ज़ोर देते हैं। मेरे बगीचे में हर मजदूर खुश है। जब भी मैं गोहाटी से अपने बगीचे में जाता हूँ तो हमेशा अपने चाय-मजदूरों से हँसकर

बोलता हूँ और उनके सुख-दुःख का हाल पूछता हूँ।"

मैंने कहा—"लेकिन जब तक मजदूरों की हालत नहीं सुधरती, वे स्वराज्य का स्वागत नहीं कर सकते। ज्यादह नहीं तो हर चाय-मजदूर के लिये प्रारम्भिक शिक्षा तो पहली शर्त्त होनी चाहिये ताकि जब वोट देने का अवसर आये तो चाय-मजदूर यों बिक न जायें।"

वह बोला—"शिक्षा होने पर क्या वोट बिकने बन्द हो जायेंगे। खैर, तसल्ली रखिये कि अब आसाम ऐसेम्बली में चाय-मजदूरों के प्रतिनिधि भी मौजूद हैं। पहले तो चाय-बगीचों के मालिकों के प्रतिनिधि ही चाय-मजदूरों के प्रतिनिधि समझ लिये जाते थे।"

उसकी टांग में फिर से दर्द होने लगा। उसके माथे की झुर्रियाँ इस पीड़ा के कारण और भी गहरी हो गईं। वह कह उठा—"सच बात तो यह है कि आसाम के बाहर मेरा दिल नहीं लगता।"

मैंने कहा—"पैंतालीस रुपये रोजाना विधान परिषद् के सदस्यों को जो भत्ता मिलता है, वह आप के लिये कोई लालच नहीं हो सकता, पर साथ ही जब—"

"मैं सब समझ गया," वह कह उठा, "आप चाय-बगीचे के मजदूर की रोजाना मजदूरी और विधान परिषद् के सदस्य के भत्ते में मुकाबला करने जा रहे हैं। यह तो ठीक नहीं। क्योंकि यहाँ तो दिमाग का काम है।"

"दिमाग का काम तो अवश्य है," मैंने कहा,—"पर पैंतालीस रुपये की बजाय रोजाना भत्ता बयालीस रुपये होना चाहिये जिससे सात या चौदह का अनुपात यहाँ भी कायम रहे।"

उसने मेरी बात का कोई उत्तर न दिया। फिर न जाने क्या सोचकर बोला—"केन्द्रीय सरकार का आबकारी महकमा चाय-

बगीचों के मालिकों से एक पौण्ड चाय पर तीन आना टैक्स लेता है और इस प्रकार केन्द्र को आसाम से सिर्फ चाय के हिसाब में लगभग सात करोड़ रुपये मिलते हैं जबकि आसाम की आमदनी इससे भी कम है। मैंने कहा—"सात का अंक यहाँ भी मौजूद है। खैर, केन्द्र को आसाम का अनुगृहीत होना चाहिये क्योंकि चाय के कारण ही तो उसे डालर मिलते हैं और हार्ड करैन्सी प्राप्त होती है।"

वह बोला—"यह भी तो कहिये यदि केन्द्र को आसाम से केवल चाय के हिसाब में सात करोड़ रुपये प्राप्त होते हैं तो आसाम की अपनी आमदनी कुल मिलाकर चौदह करोड़ तो होनी चाहिये। मैंने हँसकर कहा—"अब सात और चौदह के चक्कर से बाहर आ जाइये और यह बताइये कि चाय का कोई आसामी गीत मुझे कब मिलेगा ?"

वह बोला—"एक गीत का बोल याद आ रहा है पर यह नया गीत है। पिछले वर्ष पूजा के दिनों में मेरे चाय-बगीचे के मजदूरों ने मेरा स्वागत करते हुए चाय-नृत्य के ताल पर यह गीत गाया था—

आमार बागीचा फूहनी करी
आमार घर धुनिया करी
आमार घरर चहु पाखे
फूल फल रूम
आमार बागीचा फूहनी करी !

—हम अपने बगीचे को सुन्दर बनायेंगे
हम अपने घर बाँके बनायेंगे
घर के चारों ओर
हम फूल-फल लगायेंगे
हम अपने बगीचे को सुन्दर बनायेंगे।"

मैंने कहा—"पर प्रश्न तो यह है कि क्या यह गीत गाने से चाय-बगीचा आप से आप सुन्दर बन जायगा और बगीचे की सुन्दरता से क्या मजदूर आपसे आप शिक्षित हो जायगा। फूल-फल अच्छे हैं। अच्छे घर बनाने का विचार भी बुरा नहीं है। पर शिक्षा का कहाँ जिक्र है? अच्छी मजदूरी का जिक्र भी गायब है।"

वह झुंझलाकर बोला—"वर्तमान मजदूरी तो बुरी नहीं जबकि दूसरी सहूलियतें भी मौजूद हैं।"

मैंने कहा—"मेरे विचार में मजदूरी अभी और बढ़नी चाहिये।"

उसने कहा—"आप भी गजब ढ़ा रहे हैं। मैं पहले कह चुका हूँ कि अधिक मजदूरी का अर्थ होगा अधिक शराब और अधिक शराब का अर्थ होगा बिल्कुल ज़हर। इस से तो मजदूरों में और भी गिरावट आ जायगी।"

मैंने कहा—"क्षमा कीजिये। यदि आप चाहते हैं कि चाय-मजदूर स्वराज्य का स्वागत करें तो मजदूरों की आर्थिक और सामाजिक अवस्था अवश्य सुधारी जानी चाहिए।"

इसका उसने कोई जवाब न दिया। सोफे पर बैठा अपनी टाँग को सहलाता रहा। ऐसा भी क्या दर्द है, मैं पूछना चाहता था, जो बारबार तेज होने लगता है। तीन दिन से वर्षा का अन्त हो चुका था। फिर से धूप ने जोर पकड़ लिया था। बाहर बहुत गर्मी थी और यहाँ इस कोठी के कमरे में पंखे की पूरी गति के कारण थोड़ा आराम अनुभव हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि बाहर निकलने पर तो धूप मार ही डालेगी।

जाने क्या सोचकर वह बोला—" अबके आप आसाम आयेंगे तो यूरोपियन मालिकों के चाय-बगीचे भी देख सकेंगे।"

"अब बाहर से आने वालों पर पहली-सी पाबन्दी नहीं रही ?"

"वह जमाना लद गया। अब स्वराज्य है।"

"कहिये, चाय मजदूरों-को चाय तो आम मिल जाती होगी ?"

"आम छोड़, मुफ्त।"

"चाय-बगीचे की ओर से हर समय चाय का पानी केतलियों में उबलता रहता है। दिन में कोई सात बार चाय माँगे तो सात बार चाय मिल सकती है। हाँ, इसमें दूध नहीं मिलाया जाता।"

सात का अंक एक बार फिर मेरी कल्पना को गरमाने लगा। ऊपर से मैंने यही कहा—"इतना दूध कहाँ से आयेगा ? खाली चाय भी तो गनीमत है।"

वह बोला—"मालिकों की ओर से चाय का प्रबन्ध न किया जाय तो मजदूर बे-उबला पानी पियेंगे और मलेरिया बुखार के शिकार हो जायेंगे। इससे काम का अलग हर्ज होगा और दवा-दारू पर अलग खर्च करना पड़ेगा।"

मैंने हंसकर कहा—"तब तो मालिकों को चाय का लाल पानी महंगा नहीं पड़ता।

फिर उसने बताया कि नाबालिग लड़के-लड़कियों को आधी मजदूरी दी जाती है। उनसे कठिन काम नहीं लिया जाता। अब मैं समझा कि चाय-बगीचों में शिक्षा पर क्यों जोर नहीं दिया जाता। मालिक चाहते हैं कि आधी मजदूरी पर भी बहुत-सा काम चलता रहे।

मैंने कहा—"अच्छा, यह तो बताइये—क्या यह सच है कि स्वराज्य मिलने से पहले ऐसे अवसर भी आ जाते थे जब कुली स्त्रियों की इज्जत सुरक्षित नहीं रहती थी।"

वह बोला—"प्रायः ऐसा भी हो जाता था कि बगीचे का अंग्रेज मैनेजर या असिस्टैन्ट मैनेजर कोई ऐसी-वैसी हरकत कर

बैठता था। खैर, अब स्थिति बहुत अच्छी है। पहले के समान अब कोई ऐसी घटना सुनने में नहीं आई कि किसी मैनेजर ने केवल इसीलिये किसी कुली को गोली से उड़ा दिया हो कि उसने साहब बहादुर के रास्ते में रोड़ा अटकाया था। पहले तो खैर खून करने पर भी साहब बहादुर कानून के शिकंजे से साफ़ छूट जाते थे क्योंकि उन दिनों चाय बगीचों के बड़े-बड़े मालिक ज्यूरी के जज भी बना दिये जाते थे। अब यह बात नहीं।"

मैंने कहा—"चलिये, स्वराज्य का यह लाभ तो हुआ कि ऐसे-ऐसे जुल्मों से चाय-मजदूरों को छुटकारा मिल गया।"

वह बोला—"अब ऐसी घटना हो जाय तो साहब बहादुर को सचमुच फाँसी पर चढ़ना पड़े और जब तक उसे फाँसी पर न चढ़ा दिया जाय, तब तक बगीचे में आम हड़ताल रहे। बल्कि हो सकता है कि सहानुभूति के रूप में दूसरे बगीचों में भी मजदूर हड़ताल कर दें।"

मैंने कहा—"सुना है पहले चाय-बगीचों में कुली भर्ती करने के लिए बगीचे के ऐजेन्टों को सौ-सौ जालसाजियाँ करनी पड़ती थीं। छोटा नागपुर से कुली भर्ती करते समय उन्हें सौ-सौ झाँसे दिये जाते थे। बस कुछ ऐसी ही हालत थी जैसे गुलाम खरीदे जा रहे हों। अब तो यह हालत न होगी।"

वह बोला—"अब तो स्वराज्य है।"

मैंने कहा—"चलो स्वराज्य आया तो सौ सुख लेता आया। अब कोई मजदूर मजदूरी न करना चाहे तो वह काम छोड़कर जा सकता होगा और पहले के समान उस पर मुकद्मा चला कर उसे कठोर कारावास तो न दिया जाता होगा।"

शाम हो चली थी। मैंने सोचा, अब चलना चाहिये। आरम्भ में जब नौकर ने मेज पर चाय का सामान लाकर रखा था तो एक मजेदार-सा वातावरण पैदा हो गया, जैसे अबाबील

के नवजात शिशु ने बाहर की हवा लगने पर अपनी नन्हीं-सी चोंच खोल दी हो। पर अब तो मैं चाय की चर्चा से बुरी तरह ऊब गया था।

मैं अभी चलने की बात सोच ही रहा था कि वह कह उठा—"देखिये अब चाय की एक प्याली पिये बिना मत जाइये।"

मैंने कहा—"अभी चाय बिल्कुल नहीं चाहिये। अब मैं चलूंगा।"

वह बोला—"शायद आपको तेज चाय पसन्द नहीं। अबके के हलकी ही सही। अपना अपमान मुझे स्वीकार है। पर चाय का अपमान मैं स्वीकार नहीं कर सकता। चाय पर तो आसाम को गर्व है।"

मुझे रुकना पड़ा। नौकर को बुलाकर उसने हुक्म दिया कि चाय का पानी आग पर रख दो। टांग को सहलाते हुए उसने फिर दर्द की बात छेड़ दी—"न जाने यह कैसा दर्द है। एक लहर की तरह उठता है। फिर जैसे यह लहर टाँग को चीरती हुई कहीं इधर-उधर गुम हो जाती है।"

मैंने कहा—"चाय में नीबू निचोड़ने से बहुत लाभ हो सकता है।"

वह एकाएक हंस पड़ा—"चाय में नीबू? वैसे नीबू मुझे नापसन्द नहीं।"

मैंने उत्तर दिया—"यह मेरे एक मित्र का अनुभव है। क्या आसाम में नीबू की चाय पीने का बिल्कुल रिवाज नहीं है।"

उसने कोई उत्तर न दिया। मेरी ओर ध्यान न देते हुए वह सामने की खिड़की से पर्दा उठाकर बाहर सड़क की ओर देखने लगा। बोला—"यहां बैठे-बैठे मुझे गोहाटी याद आने लगती है।"

मैंने बढ़ावा दिया—"गोहाटी की क्या बात है! दिल्ली में

वह बात नहीं। यहां तो थोड़ा-सा काम करने के पश्चात् बड़ी थकान-सी अनुभव होने लगती है। फिर चाय अवश्य चाहिये। वहां गोहाटी में तो आदमी काम करता थकता ही नहीं, चाय मिले न मिले।"

वह बराबर खिड़की से बाहर देखता रहा जैसे गोहाटी और दिल्ली में कोई अनुपात ढूंढ रहा हो, वही अनुपात जो आसाम के चौदह सौ चाय-बगीचों और उनके चौरासी प्रतिशत यूरोपियन मालिकों में था, या वही अनुपात जो चाय बगीचों में काम करने वाले सात लाख आदमियों और उनमें से पढ़ना-लिखना जानने-वाले चौदह सौ व्यक्तियों में था। एक दो बार उसने अपनी आंखें मेरी ओर घुमाईं। उनमें सहानुभूति और स्नेह की मिली-जुली भावना उभरती नज़र आई। उसी भावना के कारण उसके चेहरे की झुर्रियां चमक उठीं। उसके ओठों के कोनों में दबकी हुई मुस्कान लपक कर मेरी ओर बढ़ना चाहती थी। पर ज्यों ही वह खिड़की से ध्यान हटाकर मेरी ओर देखता, जैसे उसे कोई भूली हुई बात याद आ जाती और वह फिर खिड़की के बाहर देखने लग जाता। बोला—"मुझे अपने चाय-बगीचे का ध्यान आ रहा है। मैं आप को विश्वास दिला सकता हूँ कि मैंने कभी अपने मजदूरों के साथ ज्यादती नहीं की। अबके आसाम लौटने पर मैं उनकी मजदूरी बढ़ा दूंगा। आपका परामर्श मुझे स्वीकार है। दूसरे चायबगीचों के मालिक चाहे बुरा ही मनायें, मैं तो अपने बगीचे में स्त्री-पुरुष की मजदूरी बराबर कर दूंगा और दोनों के लिए चौदह-चौदह आने मजदूरी देना शुरू कर दूंगा।

मैंने उछलकर कहा—"अच्छा विचार है। अब चौदह आने की बजाय मैं सवा चौदह आने पर भी जोर न दूंगा।"

वह बोला—"विश्वास कीजिये, स्वराज्य आने से बहुत पंहले मेरे चाय-बगीचे में स्वराज्य आ गया था। आखिर स्वराज्य

किसे कहते हैं? यही न कि अपना राज्य हो। हाँ, तो चाय-बगीचे में मेरा राज था। मैंने अपने मजदूरों के साथ नंगी धरती पर बैठने से कभी संकोच नहीं किया। मैंने सदा उन्हें अपना भाई समझा। मैंने उन्हें यही अनुभव कराया कि उस बगीचे में उन्हीं का राज्य है। अब जब प्रत्येक स्त्री और पुरुष को चौदह आने रोजाना मिलने लगेंगे तो उन्हें चौहरा विश्वास आ जायगा कि देश में स्वराज्य आ गया है। क्योंकि इस अनुपात से एक दम्पति को अठाईस आने मिलने लगेंगे जबकि पहले तो उनकी मिली-जुली आमदनी सात आने ही बैठती थी।"

सहसा किसी ने दरवाज़ा खटखटाया मैंने उठकर दरवाजा खोल दिया। देखा कि तीन सज्जन प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैंने अपने मित्र की ओर से उनका स्वागत करते हुए कहा—"आइये, आइये!"

वे झट अन्दर आ गये मेरे आसामी मित्र से उन्होंने हाथ मिलाये और वे सोफे पर बैठ गये जिसकी गद्दियां गहरे नीले रंग की थी। उसने उनसे मेरा परिचय कराया—"आप हैं श्री फूकन—गोहाटी कॉलिज में अंग्रेजी के प्रोफेसर। आप हैं श्री बरुआ—आसाम के नये कवि, जो नूतन प्रयोग करने में विश्वास रखते हैं। आप हैं श्री बारदोलोई—आसाम के विख्यात उपन्यासकार, और आप—हमारे पुराने मित्र जो अठारह वर्ष पूर्व आसाम में आये थे और इन्हीं दिनों यहां फिर भेंट हो गई।"

श्री फूकन ने गाँधी टोपी पहन रखी थी। सफेद खादी का कुर्ता, सफेद खादी की धोती। कन्धों पर अण्डी की चादर और आँखों पर सुनहरे फ्रेमवाला चश्मा। श्री बैज बरुआ ने खादी का सफेद कुर्ता और खुला सफेद पाजामा पहन रखा था, सिर एकदम नंगा और बदन पर खादी की खाकी जवाहर वास्केट। बड़ी-बड़ी, गोल-गोल आंखें। श्री बारदोलाई के सिर

पर सफेद गाँधी टोपी थी, बदन पर खादी का सफेद कुर्ता और सफेद बास्केट और सफेद ही धोती पहन रखी थी। पूछने पर पता चला कि उन्होंने इन्हीं दिनों एक उपन्यास लिखा है जिसमें चाय-बगीचों का एक मजेदार चित्र उपस्थित किया गया है। आसामी भाषा में तो यह उपन्यास प्रकाशित होगा ही, इसका उन्होंने अंग्रेजी में भी अनुवाद किया है और केन्द्रीय सरकार के किसी बड़े आदमी से इसकी प्रस्तावना लिखवाने के लिये दिल्ली आये हैं।"

इन आसामी मित्रों को देखकर मेरे गोहाटीवाले मित्र का चेहरा एकदम खिल उठा और टाँग का दर्द भी जैसे बिल्कुल खतम हो गया। मैंने देखा कि फूकन सबसे तेज आदमी है। उसका सिर बहुत बड़ा था पर उसके चेहरे पर काली झाइयाँ-सी नजर आ रही थीं और सुनहरे फ्रेमवाले चश्मे के पीछे से भी उसकी आँखें किसी कदर मिंची-मिंची थी। उसकी नाक चपटी थी जिससे किसी को भी यह सन्देह हो सकता था कि उसकी रगों में मंगोल रक्त की लहरें दौड़ रही हैं। उसने छूटते ही कहा—"चाय का समय हो रहा है। क्या चाय-वाय कुछ न आयगी?"

झट नौकर को बुलाकर कहा गया कि तीन आदमियों के लिए और चाय तैयार करे और पाँच के लिये बैंगन और आलू के पकौड़े भी बना लाये। गरम-गरम। और साथ ही अनार-दाने की चटनी भी, जिसमें प्याज अधिक न डाला जाय और थोड़ी चीनी अवश्य मिलाई जाय।

नौकर मालिक की सब बात समझ कर किचन की ओर लौट गया। और फूकन महोदय ने कहना शरू किया—"शाम होने से पहले ही चाय की तस्वीर उभरने लगती है।"

बैज बरुआ कह उठा—"तुम यह कहना चाहते हो कि शाम

की कल्पना के साथ मन में चाय की कल्पना भी स्वयं पैदा हो जाती है। कविता में—विशेषरूप से आधुनिक कविता में—इस प्रकार की कल्पना को आप अंग्रेजी में 'इमेज' कहेंगे। आधुनिक कविता में इमेज[1] का होना आवश्यक होगया है। आसाम की कबिता में चाय के इमेज का अभाव है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि जिस प्रान्त में इतनी चाय पैदा होती हो वहाँ की कविता में चाय का इमेज सिरे से गायब हो!"

बारदोलोई बोला—"आसामी उपन्यास में भी मैंने सर्वप्रथम चाय बगीचे का जीवन प्रस्तुत किया है। मैंने देखा कि लोग खास-खास बातों को लेकर उपन्यास लिख रहे हैं और चाय-बगीचे को कोई छू तक नहीं रहा। कविता में खाली इमेज से गुजारा चल जाता है पर उपन्यास में तो पूरी दुनिया बसाकर दिखानी होती है।"

इससे पूर्व कि मेरा गोहाटीवाला मित्र कुछ कहे मैंने खामोश रहना ही उपयुक्त समझा। वह बार-बार खिड़की से बाहर देखने लगता जैसे उसे बराबर किसी का इन्तजार हो।

बैज बरुआ फिर कह उठा—"कुछ लोगों का विचार है कि आधुनिक जीवन में काफी का रिवाज चाय से भी अधिक हो जायगा पर मैं यह नहीं मानता। काफी हाउस वालों ने अब यह तरकीब निकाली है कि क्रीम काफी बनाने लगे हैं और गरम के अलावा ठण्डी काफी भी रिवाज पा रही है। पर चाय का कोई मुकाबला नहीं।"

बारदोलोई बोला—"खैर, काफी का अपना मजा है। उसे भी यों आसानी से झुठलाया नहीं जा सकता।"

फुकन ने अपना चश्मा उतार कर उसे चमड़े के टुकड़े से

---

१ चित्र अथवा मूर्तकल्पना

साफ करते हुए कहा—"काफी के साथ काजू, विशेष रूप से घी में तले हुए नमकीन काजू का इमेज सामने आता है और चाय के साथ इधर पकोड़ों का इमेज सामने आने लगा है।"

बैज बरुआ और बारदोलोई काफी और चाय की तुलना में उलझ गये। फूकन बोला—"यों उलझने की तो आवश्यकता नहीं। हर चीज़ का अपना इमेज होता है और फिर आगे इस इमेज की भी असोशियेशन्स[1] होती हैं। काजू कच्चे हों चाहे तले हुए, और पकौड़े—इन की स्थिति गौण है, केवल असोशियेशन्स—अर्थात् केवल दुम-छल्ले। असल असल है। मेरा कहने का मतलब है कि काफी या चाय अपने आप में पूर्ण वस्तुएँ हैं और इसीलिये उनके इमेज इतने स्पष्ट और प्रत्यक्ष हैं।"

मैंने बात का रुख पलटते हुए कहा—"क्षमा कीजिये। आसाम का ध्यान आते ही अण्डी की चादर का इमेज उभरता है।"

बैज बरुआ ने हँसकर कहा—"वैसे आपकी बात ठीक है क्योंकि ज़ब हम आसाम के शिक्षित व्यक्ति या मध्यवर्ग के भद्रलोक की कल्पना करते हैं तो उसमें अण्डी की चादर सम्मिलित रहती है। पर आप यह न समझिये कि आसाम में हर किसी को अण्डी की चादर प्राप्त हो सकती है। वैसे यह सत्य है कि वहां रेशम की दस्तकारी का इतना रिवाज है कि यह आसाम की विशेष वस्तु बन गई है। आसाम में कातने और बुनने का भी आम रिवाज है। वहां जुलाहों की अलग ज़ाति नहीं होती। घर-घर कातने और बुनने का धन्धा चला करता है।"

बारदोलोई बोला—"बैज बरुआ ने बिल्कुल ठीक कहा है।"

फुकन भी कह उठा—"बिल्कुल ठीक।"

मैंने कहा—"आपका मत कुछ भी हो, मेरी आँखों में आसाम

---

१ सम्बन्धित विचार अथवा वस्तुएँ

का चित्र आते ही अण्डी की चादर सबसे पहले उभरती है। और अण्डी की चादर का इमेज उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि रेशम के कीड़ों का ध्यान न आजाय।"

फूकन बोला—"आप यह कहना चाहते हैं कि अण्डी की चादर को देखते ही आप यह सोचने लगते हैं कि इसके लिये रेशम के कितने कीड़े मर गये।"

बैज बरुआ कह उठा—"भई वाह, बात कहां जा पहुँची। आप शायद यह कहना चाहते हैं कि अण्डी की चादर देखकर रेशम के कीड़ों का इमेज सामने आता है। और रेशम के कीड़ों को देखकर उन अनगिनत मजदूरों का ध्यान आता है जो परिश्रम करते हैं और कठिन कार्य करते-करते दम तोड़ देते हैं।"

मेरे गोहाटीवाले मित्र का ध्यान भी खिड़की से हटकर मित्रों की गोष्ठी की ओर पलट गया। वैसे वह कुछ न बोला। पर उसकी आँखें चमक उठीं। उसने नौकर को आवाज़ दी कि वह जल्दी चाय लेकर आये।

नौकर ने आकर सूचना दी कि चाय तैयार होने में पाँच मिनट की देर है, पकौड़े बन चुके हैं। सब मित्रों ने यही कहा कि चाय आती रहेगी, पकौड़े पहले आ जायँ।

पकौड़ों की प्लेटें मेज पर आगईं। तीनों मित्र बढ़-बढ़कर हाथ मारने लगे। अनारदाने और प्याज की चटनी उन्हें बहुत पसन्द आई। मैंने सोचा यह वस्तु इनके लिये बिल्कुल नई है। ये बैंगन के पकौड़े थे। बैंगन का ध्यान आते ही मेरे सामने बीरबल का इमेज उभरा, जिसने अकबर से कहा था कि वह मालिक का नौकर है बैंगन का नौकर नहीं है।

मैं उठकर आज्ञा लेना चाहता था। पर मेरे गोहाटीवाले मित्र ने कहा—"थोड़ा और रुकिये, अब चाय की प्याली पीकर ही जाइये।"

फिर चारों मित्र समीप होकर जाने क्या कानाफूसी करने लगे। कोई पन्द्रह मिनट बाद नौकर चाय लेकर आता नजर आया। दो बड़ी-बड़ी चायदानियाँ लकड़ी की ट्रे में रखी हुई थीं। उसका पैर फिसल गया और वह धम-से फर्श पर गिर पड़ा। दोनों चायदानियाँ टूट गईं। चाय के छींटों से तीनों मित्रों के कपड़े खराब हो गये। मेरे पाजामे के पायचे भी बचे न रह सके।

मेरा गोहाटीवाला मित्र घबराकर इधर-उधर देखने लगा जैसे यह सब उसी का दोष हो। उसने नौकर को फटकार बताई और हुक्म दिया कि वह चायदानियों के टुकड़े बाद में उठाये और पहले दुबारा चाय बनाकर लाये।

फूकन बोला—"यह खास आसाम की चाय है, कपड़े पर रंग चढ़ गया।"

बैज बरुआ ने कहा—"मुझे आज ही एक कविता लिखनी होगी, जिसमें इस रंग की विशेष रूप से चर्चा रहेगी।"

बारदोलोई बोला—"मुझे भी अपने उपन्यास के अन्त में एक नये अध्याय की वृद्धि करनी पड़ेगी।"

मैंने कहा—"पर यह तो बताइये कि यह रंग क्या कह रहा है—अर्थात् इस रंग में आपको क्या नजर आया ?

फूकन ने चमक कर कहा—"इमेज में यह सब बड़े सजेस्टिव[1] ढंग से दिखाना होता है।"

बैज बरुआ बोला—"यदि इमेज ऊँची आवाज से बोलने लगे तो उसकी शक्ति नष्ट हो जाय।"

बारदोलोई ने मेरा पक्ष लेते हुए कहा कि इनका प्रश्न तो वैसे का वैसा ही बना रहा। पर उसका उत्तर तो देना ही होगा।

---

१ सांकेतिक।

कविता भले ही संकेत में बात करे पर उपन्यास में तो स्पष्ट रूप से दिखाना होता है। यदि मैं भूल नहीं करता तो हमारे मित्र के कहने का यही भाव है कि चाय के रंग में भी रेशम के कीड़ों का इमेज उभरता है।

फूकन कह उठा—"कहां चाय और कहां रेशम के कीड़े !"

"बिल्कुल ठीक", बैज बरुआ बोला, "चाय का रेशम के कीड़ों से क्या सम्बन्ध ?"

बारदोलोई ने मेरी पीठ ठोकते हुए कहा कि आप ही इन्हें अपनी बात समझाइये।

मेरा गोहाटीवाला मित्र बोला—"हां हां, निकल आओ मैदान में।"

मैंने कहा—"बारदोलोई महोदय ने मेरे मुंह से मेरी बात छीन ली। मैं यह कहना चाहता था कि चाय के रंग में हमेशा वे कुली और मजदूर नज़र आते हैं जो रेशम के कीड़ों के समान परिश्रम करते हैं। पर कितने लोग हैं जो चाय के रंग में यह चित्र देख सकते हैं ?"

"हाँ हाँ, बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप।" तीनों मित्र एक स्वर से कह उठे।

गोहाटीवाला मित्र खामोश था। वह फिर से अपनी टाँग सहलाने लगा। बोला—"न जाने यह दर्द कब खतम होगा।"

तीनों मित्र उठकर उसकी टांग की परीक्षा करने लगे। मैं अजब झंझट में था। अब दर्द से कैसे छुट्टी मिले ? खिड़की से झाँककर मैंने देखा कि बाहर कुछ-कुछ अँधेरा छा रहा है।

इतने में एक तारवाले ने आवाज़ दी। यह तार मेरे गोहाटीवाले मित्र के लिये था। उसने तार ले लिया और उसे खोलकर पढ़ा तो उसके हवास उड़गये। बोला—"ग़जब हो गया ! सच-मुच गजब हो गया !"

"क्यों, क्या बात है?"—यह कहते हुए हम सब उसके चेहरे की ओर देखने लगे।

वह बोला—"हमारे चाय-बगीचे में हड़ताल शुरू हो गई।"

इकन्नी

"इसे रख लो। इनकार न करो। देखने में यह इकन्नी है पर इसकी कीमत सचमुच इससे कहीं ज्यादा है। बस रख लो इसे। मेरे पास ले-देकर यही इकन्नी है, चाहे वह तुम्हारी मजदूरी नहीं चुका सकती......"

यह कहते हुए मैंने रामू मोची की हथेली पर इकन्नी रख दी। पूरा आध घण्टा लगाकर उसने मेरे बूट की मरम्मत की थी। मज़दूरी की बात उसने मेरे इन्साफ पर छोड़ दी थी। इकन्नी जेब में डालते हुए उसने फटी-फटी आँखों से मेरी ओर देखा और फिर शायद उसे जेब में मसलने लगा।

उसे क्या मालूम था कि इस इकन्नी के साथ मेरी एक कहानी जुड़ी हुई है—

मुझे दिल्ली से कुण्डेश्वर जाना था। ललितपुर तक रेल का सफ़र था। आगे लारी जाती थी। कई रोज़ तो इसी असमंजस में गुज़र गये कि आज रुपया मिले, कल मिले।

दिल्ली में पत्रकारों का एक सम्मेलन हो रहा था। मेरा एक मित्र, जो कुण्डेश्वर से प्रकाशित होनेवाले 'मधुकर' में काम

करता था, इस सम्बन्ध में दिल्ली आया। उसने मुझे अपने साथ चलने के लिये बहुत मजबूर किया। मैंने काम का बहाना करके बात टाल दी। वह मान गया। पर लगे हाथों मुझे बताता गया कि ललितपुर तक पांच रुपये का टिकट लगता है और आगे पन्द्रह आने मोटर के लिये काफी हैं।

एक सप्ताह बीत गया। ये कुण्डेश्वर की तैयारी न कर सका। रुपये की प्रतीक्षा थी। सुसरा रुपया भी कभी-कभी बहुत तरसाता है और चाहे मेरी यात्रा की गाथाएं रुपये की तंगी से भरी पड़ी हैं, दिल्ली की वह तंगी मुझे सदा याद रहेगी।

जिस दिन मैं दिल्ली पहुँचा था मेरे पास कुल चन्द-आने पैसे मौजूद थे। वे छोटी-छोटी जरूरतों पर खर्च हो गये। जहां से रुपया मिलना था न मिला। पर मैंने अपने चेहरे पर घबराहट के चिन्ह न पैदा होने दिये।

नई दिल्ली से, जहां मैं अपने एक मित्र के यहां ठहरा हुआ था, मैं अक्सर पैदल ही शहर पहुंचता और फिर पैदल ही अपने निवास-स्थान को लौटता। हर रोज मुझे लौटने में देर हो जाती। मेरा मित्र हंस कर इसका कारण पूछता। मैं हंस कर बात आई-गई कर देता। कैसे कहता कि मेरी जेब खाली पड़ी है।

खाली जेब की मुझे कोई विशेष चिन्ता कभी-कुभार ही होती है। अब यह इकन्नी इस मोची को दे कर मेरी जेब खाली हो गई है तो क्या हर्ज है? मैं खुश हूँ।

एक दिन दिल्ली में मेरी एक मित्र के यहां दावत थी। वहां से फारग़ होते होते दस बज गये। अब वापिस नई दिल्ली लौटना था। मैं पैदल ही चल पड़ा। हौसला हारना मैंने सीखा ही नहीं।

पास से एक तांगा गुज़रा। मैंने आवाज़ दी—"तांगा!"

तांगा रुक गया। एक सवारी पहले बैठी थी।

तांगेवाला बोला—"किधर जाओगे ?"

"जिधर भी ले चलो।"

"खूब ! इसमें जिधर भी ले चलो······किधर ले चलूं ? मैं तो नई दिल्ली में बारह खम्भा जा रहा हूँ।"

"मुझे भी वहीं ले चलो।"

"तीन आने पैसे होंगे। रात बहुत चली गई है। दूसरा तांगा नहीं मिलने का।"

"पर भाई मेरे पास तो पैसे हैं नहीं।"

"पैसे हैं नहीं ? अजी साहब, यों मज़ाक न करो। यह ठीक नहीं।"

"मैं मज़ाक नहीं कर रहा। मेरे पास सचमुच पैसे नहीं हैं।"

तांगेवाला कोई भला आदमी था। उसे दया आ गई। बोला—"अच्छा तो बैठ जाओ। तुम्हारे तीन आने पैसे खुदा से मांग लूंगा।"

"बहुत ठीक।"

तांगा चला जा रहा था और मैं सोच रहा था कि जब खुदा ने मुझे ही तीन आने नहीं दिये तो इस तांगेवाले को वह मेरे हिसाब में कैसे तीन आने दे देगा। मेरे दिल में कई तरह के विचार आते रहे। खुदा क्या बला है ? कुछ लोग कहते हैं कि ख़ुदा का ख्याल सिर्फ एक बहम है। क्या यह सचमुच एक बहम है ?···क्या मैं खुदा पर उतना ही यकीन रखता हूँ जितना यह तांगेवाला। यदि नहीं, तो मैंने कैसे मान लिया कि वह मेरे हिसाब में खुदा से तीन आने वसूल कर सकेगा ? उस समय मुझे वह घटना भी याद आई। जब मैंने एक प्रश्न के उत्तर में अपने एक साहित्यकार मित्र को बताया था कि अगर खुदा न भी हो, तो सिर्फ अपनी पनाह के लिये हमें एक खुदा की कल्पना ज़रूर कर लेनी चाहिये। फिर मैंने सोचा कि इस

तांगेवाले ने मुझे जरूर कोई साधु समझ लिया है। सिर के लम्बे बालों और दाढ़ी को देखकर अक्सर लोगों को मुग़ालता हो जाता है। और यदि उसे मालूम हो जाय कि सचमुच के खुदा पर विश्वास करने की बजाय मैं केवल एक काल्पनिक खुदा को मानता हूँ तो झट वह मुझे अपने तांगे से उतार बाहर करे।

साथवाला मुसाफ़िर बोला—"आप क्या काम करते हैं?"

मैंने उत्तर दिया—"लोकगीत संग्रह करता हूँ।"

"किसी कम्पनी की तरफ़ से?"

"नहीं साहब, यह मेरा निजी शौक है।"

"निजी शौक है? खूब! पर साहब यह दुनिया है। रुपये कमाने ही के तो सब धन्धे हैं।"

"पर साहब मैं यह काम सिर्फ रुपया कमाने के लिये नहीं कर रहा हूँ।"

"फिर से अमीर होंगे?"

"घर से मैं रुपये नहीं लेता।"

"तो रोटी और सफ़र का खर्च कैसे चलाते हो?"

"पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिख कर थोड़े पैसे पैदा कर लेता हूँ, और सच कहता हूँ कि यदि ये पैसे मिलने बन्द भी हो जायें तो भी यह काम नहीं छोड़ूंगा।"

"आप जरूर कोई साधु हैं।"

"नहीं साहब, मैं तो एक गृहस्थी हूँ। मेरी पत्नी और कन्या जो अक्सर सफ़र में मेरे साथ रहती हैं इन दिनों घर पर गई हुई हैं।"

"खूब!"

"खूब हो या न हो, कुछ भी कह लीजिये। इस समय तो मैं मुफ्त में तांगे की सवारी कर रहा हूँ। सच बात तो यह है कि मैं

भी इस तांगेवाले की तरह एक मज़दूर हूँ। फ़र्क़ इतना ही है कि वह नकद मज़दूरी पाता है। पर इस ग़रीब लेखक को पत्र-पत्रिकाओं वाले टालते चले जाते हैं, नहीं तो साहब आज यह नौबत न आती कि मुफ्त में तांगे की सवारी माँगू। और यह तो इस आदमी की शराफ़त है कि उसने मेरे हिसाब के तीन आने खुदा से लेने की बात कहकर मुझे एहसान के बोझ से भी बरी कर दिया है।"

सड़क पर बिजली की रोशनी थी और इसके मुकाबले में गरीब तांगेवाले का लैम्प की बत्ती बहुत धीमी जल रही थी।

"तांगेवाला हमारी बातें बड़े मजे से सुन रहा था। उसे खुश करने के लिये मैंने कहा—"साहब मैं तो समझता हूँ कि तांगेवालों की कमाई खून-पसीने की कमाई है। अगर कभी फिर इस दुनिया में मुझे आदमी का जन्म मिले तो मैं तो चाहता हूँ कि किसी तांगेवाले के घर जन्म लूँ।"

ताँगेवाला बोला—"यह न कहो जी। हम तो दिन में सौ झूठ बोलते हैं और मैं तो चाहता हूँ कि आप को निजात मिले। पैदा होना और मर जाना—ये तो बहुत सख्त इम्तिहान है जी।"

दिल्ली में वे सप्ताह मैंने बड़े असमंजस में गुजारे। खाने की कोई तकलीफ़ न थी। पर दिन में कई-कई मील पैदल चलना, वह भी चमड़े का भारी थैला उठाये हुए, यह कुछ आसान काम न था। मित्रों से मिलना और गीतों की तलाश में स्थान-स्थान पर पहुँचना—यह तो ज़रूरी था।

कुण्डेश्वर से पत्र आया। लिखा था—फ़ौरन चले आओ। यह चौबेजी का पत्र था। अब वहां जाना और भी ज़रूरी हो गया।

अपने मित्र से मैंने सात रुपये उधार लिये। पांच रुपये

पन्द्रह आने किराये के लिये, एक रुपया और एक इकन्नी ऊपर के खर्च के लिये।

आठ आने तो स्टेशन तक तांगेवाले को देने पड़े। बाकी बचे साढ़े छे रुपये। टिकट-घर की खिड़की पर पहुँचा तो पता चला कि ललितपुर तक पांच रुपये का नहीं बल्कि पांच रुपये ग्यारह आने का टिकट लगेगा। यह भी खूब रही। तो क्या उस कुण्डेश्वरवाले मित्र ने मज़ाक किया था। अपनी कमज़ोर याददाश्त पर मैं बहुत झल्लाया। और कोई चारा भी तो न था। जो होगा देखा जायेगा। मैंने ललितपुर का टिकट लिया और कुली से असबाव उठवाकर गाड़ी में जा बैठा। एक इकन्नी कुली को दी।

अब जो बाकी पैसे गिने तो कुल साढ़े दस आने बचे। अब याद आया कि डेढ़ आना दिन में तांगे पर खर्च हो गया था। साढ़े दस आने—कुल साढ़े दस आने! दिल में कई उतार-चढ़ाव पैदा हुए। फिर किसी तरह दिल को समझाया कि ललित-पुर तो पहुँचूँ, देखा जायगा। रात भर रेलगाड़ी का सफ़र रहा, नींद न आई। अगले सबेरे ललितपुर आ गया। कुली समान बाहर ले आया। पता चला कि लारी के अड्डे तक तांगेवाले को एक दुअन्नी देनी होगी। मेरी जेब में कुल साढ़े दस आने थे। बड़ी मुश्किल से कुली को दो पैसे में भुगताया और तांगावाला एक में मान गया।

तांगा चला जा रहा था।

साथ की सीटवाले युवक से मैंने पूछ लिया—"क्यों भाई! कुण्डेश्वर का यहां से क्या लगेगा?"

यह प्रश्न मैंने कुछ इस लहजे में किया था कि उसे यही महसूस हो कि मैं इस सिलसिले में बिल्कुल अपरिचित हूँ।

वह बोला—"सिर्फ पन्द्रह आने।"

"पन्द्रह आने !" पर भाई मेरी जेब में तो सिर्फ दस आने रह गये हैं, और इनमें से एक इकन्नी तांगेवाले की हो चुकी समझिये। और मेरे पास रह गये सिर्फ नौ आने।"

"नौ आने !"

"तो बाकी छः आने कहां से पाओगे ?"

"यही तो चिन्ता है। कोई उपाय हो तो बताओ।"

"अब यह मैं क्या जानूं, भाई ? मैं तो भाई अभी विद्यार्थी हूँ। सच जानो, मेरे पास होते तो मैं टिकट ले देता। और कठिनाई तो यह कि मैं बाहर से पढ़ने आता हूँ। कोई मुझे उधार देगा नहीं।"

मैं चुप हो गया और सच मानो, मैं यहां पहुंचकर यों एकदम चुप हो जाने की वजह से उस विद्यार्थी पर असर डाल सका।

वह भी चन्द मिनट तक खामोश बैठा रहा। तांगा चला जा रहा था और मैंने तांगेवाले से कहा—"अरे भाई, अगर तुम मुझसे अपनी इकन्नी न लो तो मेरी कठिनाई घटकर छः आने की बजाय पाँच आने की ही रह जाती है।"

वह बोला—"साहब, मैं अपनी इकन्नी ज़रूर लूंगा। यों इकन्नियां छोड़ने लगूं तो मेरा घोड़ा भूखा मर जाय और घर जाने पर बीबी की गालियां अलग खाऊँ।"

उसे यह सन्देह हुआ कि मैं अड्डे पर पहुँचकर इकन्नी देने से इनकार न कर बैठूं। उसने तांगा रोक लिया। बोला—"अड्डा दूर नहीं है। इकन्नी निकालिये।"

मैंने इकन्नी उसकी हथेली पर रखी तब वह आगे चला।

वह विद्यार्थी पूछने लगा—"काम क्या करते हो।"

"मैं हर भाषा के लोकगीत संग्रह करता हूँ।"

"जी हाँ, 'विश्वमित्र' में मैंने गीतों पर एक लेख पढ़ा था। आप

ही का होगा ।"

मैंने हां में सिर हिला दिया। काम बनता देखकर मैंने उसे बिगाड़ना मुनासिब न समझा। नहीं तो कोई और अवसर होता तो मैं पूछता कि किस महीने के विश्वमित्र की बात है और लेख का क्या शीर्षक था।

वह बोला—"आप का नाम ?"

मैंने अपना नाम बताया और वह बोला—"वह लेख मैंने बड़े ध्यान से पढ़ा था। अवश्य ही वह आपका लिखा हुआ होगा। यह तो बड़ा महान् कार्य है जी।"

इस प्रशंसा ने मुझे और भी लज्जित कर दिया। यह बहुत महान् कार्य है!......यदि यह कार्य इतना महान् है तो मेरी आर्थिक अवस्था इतनी ख़राब क्यों है ?......लारी का टिकट लगेगा पन्द्रह आने और मेरे पास हैं सिर्फ़ नौ आने।

वह बोला—"आप अब चिन्ता न करें। मैं आपका प्रबन्ध अपने ज़िम्मे लेता हूँ। आप किसी से मत कहें कि आपके पास पैसे कम हैं। आप लारी पर सवार हो जाइये। अभी लारी दो घण्टा बाद चलेगी। इतने में मैं देख लूंगा।"

अड्डे पर पहुँचकर उसने मुझे लारी में बिठा दिया और वह स्वयं टिकट कन्डक्टर से जाकर मिला। कौन जाने उसने उससे क्या-क्या सच्ची-झूठी बातें की होंगी। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वह उसे लिये हुए आया और बोला—"वे नौ आने इन्हें दे दीजिये। ये आपको कुण्डेश्वर का टिकट दिये देते हैं।"

मैंने बटुआ खोला। नौ के नौ आने मैंने बड़े ध्यान से देखे। पर बाहर सिर्फ आठ आने निकाले। इन्हें उसे देते हुए कहा—"आप आज्ञा दें तो एक इकन्नी मैं रख लेता हूँ। कुण्डेश्वर में ज़रूरत पड़ेगी। सड़क से चौबेजी के मकान तक असबाब ले

जानेवाले कुली को दे दूंगा। वहां पहुंचते ही यह तो ज़ाहिर करने से रहा कि मेरी जेब में एक इकन्नी तक नहीं।"

"हां, हां, इकन्नी आप शौक़ से रखिये।"

वहां कुण्डेश्वर में पहुंचा तो सड़क पर चौबेजी का एक मित्र मौजूद था। उसने मेरा असबाब पहुंचाने का बन्दोबस्त कर दिया!

वह इकन्नी मेरे पास बची रही। इसे मैंने सम्भालकर जेब में रख लिया।

जब कभी चौबेजी को गिलौरी की आवश्यकता पड़ती मैं झट जेब से इकन्नी निकालता और कहता—"पैसे मैं दूंगा।"

चौबे जी नहीं कहते हुए इसे वापिस कर देते।

और जब मैंने रामू से बूट की मरम्मत कराने के बाद यह कहा—इसे रख लो, इनकार न करो, देखने में यह इकन्नी है पर इसकी कीमत सचमुच इससे कहीं ज्यादह है—मेरी आंखें गीली हो गईं। मैंने देखा कि रामू की आंखें भी गीली हो गईं। उसे सारे दिन में इस इकन्नी के अतिरिक्त और कुछ न मिला था। उसने सोचा होगा कि उसने एक अन्तर्यामी साधु का बूट मरम्मत किया है, नहीं तो वह कैसे जानता है कि घर में उसकी भूखी बीबी और बच्चे इसी इकन्नी की बाट जोह रहे हैं।

नये देवता

गाजर के गरम हलवे की खुशबू से सारा कमरा महक उठा था और यदि किसी दावत की सबसे बड़ी खूबी यही है कि हर खाना बड़े सलीके से तैयार किया जाय और मामूली से मामूली चीज में भी एक नया ही जायका पैदा कर दिया जाय तो निस्सन्देह दिल्ली की वह दावत मुझे सदा याद रहेगी।

इतनी भी क्या खुशी है, मैं सोच रहा था, इतना तो नफासत हसन पहले भी कमा लेता होगा। डेढ़ सौ रुपये के लिए उसने अपनी आजादी बेच दी और अब खुश हो रहा है। वह तो शुरू से बाग़ियाना तबीयत का आदमी मशहूर है। उसकी कहानियाँ प्रगतिशील साहित्य में विशेष स्थान पाती रही हैं। फिर यह नौकरी उसने कैसे कर ली। ग़रीबों पर जुल्म ढाये जाते हैं, जिन्दगी की हतक की जाती है, सरमायादार मकड़ी की तरह बराबर अपना जाला बुनते रहते हैं और गरीब किसान मज़दूर आप से आप इस जाले में फँसते चले जाते हैं—इन विचारों का मालिक आज खुद मक्खी की तरह इस जाले में फँस गया

और इस खुशी में यार दोस्तों को दावत दे रहा है। पर मैंने अपने विचारों का असर अपने चेहरे पर जाहिर न होने दिया।

दावत में कई लेखक सम्मिलित थे। मैं सोचने लगा हिन्दुस्तान की आजादी के सम्बन्ध में इन हैट पहननेवाले लेखकों से अधिक सहायता की आशा न रखनी चाहिये। ब्राउनिंग का विचार—'कुछ चाँदी के सिक्कों के बदले में वह हमें छोड़ गया!'—मेरी कल्पना में फैलता चला गया। इन प्रतिक्रियावादियों को यह गुमान कैसे हो गया कि वे प्रगतिशील साहित्य की चर्चा करके सुननेवालों की आंखों में धूल डाल सकते हैं? कहां आजादी का वास्तविक आदर्श, और कहां यह चाँदी की गुलामी। नफासत हसन के गोरे चेहरे पर हँसी नाच रही थी। सच पूछो तो यह हँसी मुझे बड़ी भयानक दिखाई देती थी।

गाजर का हलवा सचमुच बहुत स्वादिष्ट था और मेरे विचारों पर छा रहा था। चुम्बक इतना समीप हो और लोहे के कण खिंचे न चले आयें, यह कैसे हो सकता है? यदि यह हलवा न होता तो मैंने नफासत हसन को और भी अधिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा होता।

बहुतों के नामों से मैं अपरिचित था। यह और बात है कि कई चेहरे मेरे लिये नये न थे। विशेष रूप से मौलाना नूर हसन आरजू को तो इससे पहले कभी फोटो में भी न देखा था। उनकी आवाज मुझे बहुत प्यारी लगी। बहुत शीघ्र मैंने उनकी प्रतिभा का लोहा मान लिया। यह अनुभव होते देर न लगी कि उन्हें ऐसी-ऐसी युक्तियां याद हैं कि अवसर आने पर वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को घास के तिनके के समान अपने पथ से उड़ा दें। आयु में वे कोई वृद्ध न थे, अधेड़ ही थे। पर

नये युग से इतना ही सम्बन्ध रखते थे कि सरकारी नौकरी के कारण पाजामे और शेरवानी से मुंह मोड़कर अंग्रेजी फैशन का सूट पहनना शुरू कर दिया था।

बर्फ में लगी हुई गंडेरियों के ढेर पर सब लेखक बढ़-बढ़ कर हाथ मार रहे थे। जैसे ही गंडेरी का गुलाब में बसा हुआ रस गले से नीचे उतरता मौलाना आरजू की आंखों में एक नई ही चमक आ जाती।

नफासत हसन कह रहा था—"ये गँडेरियां तो खास तौर पर मौलाना के लिये मँगवाई गई हैं।"

"खूब!" मौलाना बोले—"और गाजर का हलवा भी शायद मेरे लिए ही बनवाया गया था।"

"जी, हाँ।"

नफासत हसन की बेबाक निगाहें मौलाना की शोख़ आँखों में गड़कर रह गई। कुछ लोगों का विचार था कि उसे अपने महकमे में नौकरी दिलाने में मौलाना का बहुत हाथ था। पर स्वयं नफासत हसन ऐसा आदमी न था कि कल्पना में भी किसी का आभार मान सकता। उसका विचार था कि स्वयं समय की करवट के कारण ही यह नौकरी प्राप्त कर सका है और गाजर का स्वादिष्ट हलवा और गुलाब में बसी हुई गँडेरियां किसी मौलाना का एहसान उतारने के ख़याल से पेश नहीं की गई।

मौलाना इधर बहुत मोटे हो गये थे और वे हैरान थे कि हिन्दुस्तान के सबसे बड़े शहर में लगातार कई बरस गुजारने के बाद भी नफासत हसन नें अपनी बैठक में एक-आध बड़ी कुर्सी रखने की आवश्यकता क्यों महसूस न की थी। अबतक बढ़इयों ने बड़ी-बड़ी कुर्सियाँ बनाना बिल्कुल छोड़ तो नहीं दिया। यह और बात है कि नये ज़माने के लोग अब कभी इतने मोटे न हुआ

करेंगे। अपनी गोल-गोल घूमती हुई आँखें उन्होंने मेरी तरफ़ फेरीं और मैंने देखा कि उनमें ग़रूर और ग़म गले मिल रहे हैं और वे बीते वक्तों को वापिस आता देखने के लिये बेकरार हो रहे हैं।

धीरे-धीरे महफिल छिदरी होती गई। नये मित्र यह विचार लेकर लौटे कि नफासत हसन एक आनन्दप्रिय और मित्रों के काम आनेवाला आदमी है, यह अलग बात है कि वह रस्मी शिष्टाचार में नहीं पड़ता। है भी ठीक। मित्रता होनी चाहिये स्वतन्त्र कविता-सी—तुकान्त और छन्द के बन्धन से मुक्त।

मौलाना बराबर जमे हुए थे। मुझसे पूछने लगे —"साहब, सोमरसट माम का मुताला किया है आपने ?" उन्होंने यह बात इस लहजे में पूछी थी कि मुझे गोलमेज जवाब पर उतरना पड़ा— "साहब, कहां तक मुताला किया जाय। अनगिनत पुस्तकें हैं और अनगिनत लेखक। अब मैं सोमरसट माम का ध्यान रखूंगा।"

"तो यह कहिये न कि आपने सोमरसट माम की कोई किताब नहीं पढ़ी।"

अब मैं समझा कि सोमरसट माम कोई लेखक हैं। मैंने झेंपते हुए कहा—"जी हां, यही समझ लीजिये।"

"तो इसका यही मतलब हुआ न कि आपने यों ही उमर जाया की।"

इस पर नफासत हसन बिगड़ उठा। गरमागरम बहस छिड़ गई। पता चला कि मौलाना ने नफासत हसन को लिए सोमरसट माम की चर्चा की थी। एक दिन स्वयं नफासत हसन ने यही प्रश्न मौलाना से किया था और जब उन्होंने मेरी तरह बात टालनी चाही तो वह कह उठा था—तो इसका यही मतलब हुआ न कि आपने अब तक यों ही उमर जाया की।

इधर मौलाना ने अंग्रेज़ी साहित्य में प्रवेश करना शुरू कर

दिया था। पर नफासत हसन अब तक यही समझता था कि यह केवल एक दिखावा है और अंग्रेजी साहित्य की नई प्रवृत्तियों से उन्हें कोई लगाव नहीं है। जब भी वह उनके हाथ में कोई अंग्रेजी पुस्तक देखता उसके मन में व्यंग्य जाग उठता, जैसे साँप के सिर में ज़हर जाग उठता है। इस दिखावे की आखिर क्या ज़रूरत है ? बेहूदा दिखावा। नया रंग तो सफेद कपड़े पर ही ठीक चढ़ता है। मौलाना बड़ी सरल और प्रभावमयी भाषा में कविता लिखते थे। लेख भी लिखते थे। कहानी के क्षेत्र में उन्होंने कोई यत्न न किया था। हां, जब कोई घटना सुनाते तो यही गुमान होता कि कोई कहानी जन्म ले रही है। और यदि उस समय कोई आदमी उनकी प्रशंसा कर देता तो ख़ामख़ाह उनकी आंखों में बहुत ऊंचा उठ जाता। दाद पाकर हां वे दाद दे सकते हों, यह बात न थी। प्रायः वे किसी ऐसे मुआवजे के बिना ही नवयुवक लेखकों की पीठ ठोकते रहते थे। उनका यह सरपरस्ताना स्वभाव ही नफ़ासत हसन के समीप वह दोष था जिसके कारण, जैसा कि उसका विचार था, न वह पुराने युग का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ हुए थे और न नये युग से ही सम्बन्ध जोड़ सके थे।

नफ़ासत हसन जब भी मौलाना के विरुद्ध विष उगलता मुझे यों लगता कि साहित्य का नया युग अपने से पहले युग का अपमान कर रहा है। यह तो अपना ही अपमान है। ऊपर से इसका घिनौनापन आंख से कितना ही ओझल रहे, पर जब यह बात समझ में आ जाती है कि साहित्य एक ऐसी वस्तु है जिसका विकास होता है तो कोई भी लेखक अपना यह व्यवहार जारी नहीं रख सकता।

हां, तो सोमरसट माम वाला व्यंग्य नफ़ासत हसन न सह सका। बोला—"बस, बस, चुप रहिये, इतनी जबान न

खोलिये !"

नफासत हसन की जबान पर रन्दा चलने का गुमान होता था। मौलाना ने थोड़ा घूर कर उसकी ओर देखा और बोला—"इतने गर्म क्यों होते हो, मियां ? उमर ही में सही, मैं तुम्हारे बाप के बराबर हूं !"

"बस, बस, यह शफकत अपने ही पास रखिये। मुझे नहीं चाहिये यह कमीनी शफकत......यह सरपरस्ताना शफकत... बड़े आये हैं मेरे बाप...बाप ! इतनी जुबानदराजी !"

मौलाना ने अब तक यही समझा था कि वे हास्य की सीमा पर ही खड़े हैं। मामला तो दूसरा ही रंग धारण कर चुका था। उनके चेहरे पर क्रोध की तह चढ़ गई। बोले—"एक सुसरे सोमरसट माम की खातिर क्यों मेरी हतक करने पर तुले हो, मियां ?......कम्बख्त सोमरसट माम !"

बात तू-तू, मैं-मैं का रूप धारण कर गई। मुझे तो यही आशंका हुई कि कहीं दोनों लेखक हाथापाई पर न उतर आयें।

नफासत हसन उस दिन मेजबान था और घर पर आये हुए मेहमान की शान में हर तरह की जुबानदराजी से उसे परहेज करना चाहिये था। फिर यह मेहमान कोई मामूली आदमी न था, उसका एक समकालीन लेखक था।—उमर में उससे बड़ा और भाषा पर अधिकार की दृष्टि से उससे कहीं बढ़कर। मैं सोचने लगा कि सोमरसट माम पर नफासत हसन इतना क्यों फिदा है ? वह भी मौलाना की तरह एक आदमी ही तो है, कोई फरिश्ता नहीं है और मैं तो समझता हूं हर लिहाज से नफासत हसन के कमरे में पड़ी हुई किसी भी हल्के भूरे रंग की कुर्सी से मौलाना ज्यादह कीमती थे। नफासत हसन इतना गरम क्यों हो गया था ? वह शायद अपने मेहमान को कुर्सी से

उठा देना चाहता था। यह ठीक है कि मौलाना का व्यंग्य जरा तीखा था पर था तो आखिर यह व्यंग्य ही और इसका उत्तर अगर व्यंग्य से ही दिया जाता तो यह हृदय-विदारक प्रदर्शन तो न हुआ होता।

सोमरसट माम आखिर क्या लिखता होगा ? क्या उसे अपनी जन्मभूमि इंग्लिस्तान में भी नफासत हसन जैसा कोई मर मिटनेवाला प्रेमी नसीब हुआ होगा। मुझे यह सन्देह हुआ कि नफासत हसन के बहुत से वाक्य, जिन्हें वह मौका-बेमौका निहायत शान से अपनी बातचीत और लेखनी में नगीनों की तरह जड़ने में होशियार सुनार बन चुका है, अवश्य विलायत की किसी फैक्टरी से बन के आये हैं, उसकी अपनी रचना हरगिज नहीं। मैं सोचने लगा कि सर्वप्रथम कब सोमरसट माम की लेखनी ने उस पर जादू-सा कर दिया था और क्या यह जादू कभी खतम भी हो जायगा ?

एक दिन उसने मुझ से पूछा—"औरत किस वक्त सुन्दर लगती है ?"

मुझे कोई उत्तर न सूझा। मैंने कहा—"आप ही बताइये।"

वह बोला—"हां, तो सुनो......जब उसे तीन दिन से बुखार आ रहा हो और उसके हाथों की रगें नीली पड़ जायें तब औरत कितनी सुन्दर लगती है, कितनी सुन्दर!"

मैंने सोचा शायद यह नगीना भी सोमरसट माम की फैक्टरी से बनकर आया हो।

मैंने नफासत हसन से कहा—"गुस्सा थूक दो, मियां। सोमरसट माम तो एक देवता है।"

वह बोला—"और मैं ?"

"आप भी देवता हैं, मियां।"

मैंने उसे बताया कि देवताओं में तीन बड़े देवता हैं। ब्रह्मा,

विष्णु और शिव। तीनों की अपनी-अपनी विशेषता है, जिसके कारण वे इतने लोकप्रिय बन गये हैं। ब्रह्मा जन्म देता है, विष्णु पालन करता है और शिव ठहरे मृत्यु का नाच नाचनेवाले नटराज !

नफासत हसन का ध्यान अब मेरी तरफ खिंच गया। उधर मौलाना की आँखों में भी गुस्सा ठण्डा पड़ गया था और वे मेरी बातों में दिलचस्पी ले रहे थे। मैंने बताया कि हर लेखक विभिन्न अवस्थाओं में ब्रह्मा, विष्णु और शिव होता है। जब कोई एक चीज लिखने में सफल हो जाता है मैं उसे ब्रह्मा कहना पसन्द करूंगा। वह इस चीज को सँभाल कर रखता है और यथासम्भव उसमें सुधार भी करता है। उस समय वह विष्णु के सदृश होता है और जब वह अपने ही हाथ से किसी रचना के टुकड़े-टुकड़े कर डालता है तो वह शत-प्रतिशत शिव का रूप धारण कर लेता है।

मौलाना बोले—"बहुत खूब ! आपकी कल्पना धन्य है।"

मैंने झट से कह दिया—"मेरी कल्पना ! नहीं, मौलाना, नहीं। यह मेरी कल्पना नहीं। मतलब यह कि यह मेरा मौलिक विचार नहीं।"

"तो किसका खयाल पेश कर रहे हैं आप ?"

"बम्बई की पी० ई० एन० सोसायटी में बुलबुले-हिन्द श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मेरे एक भाषण पर सदारत करते हुए यह विचार पेश किया था।"

"बहुत, खूब ! बुलबुले हिन्द ने आपके भाषण पर सदारत की थी ! हाँ, तो अब कोई मौलिक विचार हो जाय जरा।"

"मौलिक ! मौलिक की भी खूब कही। मुझे तो सिरे से यही शक हो रहा है कि मौलिक नाम की कोई चीज होती भी

है या नहीं ।"

"नफ़ासत हसन बौखलाया—"क्या कह रहे हो, मियां ? सुनिये मैं एक ख़याल पेश करता हूँ—जैसे ही भोर की पहली किरण आंखें मलती हुई धरती पर उतरी, पास की कच्ची दीवार अँगड़ाई ले रही थी ।"

मौलाना ने कहा—"दीवार अँगड़ाई ले रही थी ?"

मैंने बीच-बचाव करते हुए कहा—"इस समय नफ़ासत हसन एक ब्रह्मा हैं, मौलाना !"

"ब्रह्मा !"

"जी हां, ब्रह्मा, और न जाने कब तक वह विष्णु हुआ । यह ख़याल सँभाल-सँभाल कर रखेगा और स्वयं अपने हाथों से इस ख़याल का गला घोंट डालेगा । उसे स्वयं अपनी रचना पर हँसी आयेगी—केवल हँसी, यदि यह विचार उसका शत-प्रतिशत मौलिक विचार नहीं है और पूरी-पूरी शर्म, यदि यह सचमुच शत-प्रतिशत उसका मौलिक ख़याल है ।"

नफ़ासत हसन चाहता तो झट मेरे विचार का प्रतिवाद कर देता । पर वह चुप बैठा रहा । शायद वह कुछ झेंप-सा गया था और अपने हीनता के भाव को छुपाने का यत्न कर रहा था ।

मौलाना बोले—"ब्रह्मा, विष्णु और शिव के बारे में आज मैं कुछ और भी सुनना चाहता हूँ ।"

मैंने कहा—"सुनिये, विष्णु और शिव के हजारों मन्दिर हैं और ब्रह्मा का एक भी मन्दिर नहीं है कहीं ।"

"ब्रह्मा का एक भी मन्दिर नहीं ?"

"जी, नहीं । सुनिये तो, बड़ी दिलचस्प कहानी है । एक बार विष्णु और ब्रह्मा में यह मुकाबला हो गया कि कौन पहले शिवलिंग की गहराई और उँचाई का पता लगा सकता है ।

विष्णु जड़ की तरफ चल पड़े और ब्रह्मा चोटी की तरफ। ब्रह्मा ऊपर चढ़ते गये मगर शिवलिंग की चोटी कहीं नजर न आती थी। ऊपर से एक चमेली का फूल गिरता आ रहा था। ब्रह्मा ने पूछा किधर से आना हुआ ?

फूल बोला—"शिवलिंग की चोटी से ?"

ब्रह्मा ने पूछा—"कितनी दूर है वह चोटी ?"

फूल ने कहा—"दूर, बहुत दूर।"

ब्रह्मा चमेली के फूल के साथ पीछे को हो लिये। रास्ते में उन्होंने इस फूल को इतना-सा झूठ बोलने के लिए राजी कर लिया कि वह विष्णु के सामने कह दे कि वे दोनों खास शिवलिंग की चोटी से आ रहे हैं। पर शिव तो ठहरे अन्तर्यामी, ब्रह्मा और चमेली को बड़ी भारी सजा दी गई—रहती दुनिया तक ब्रह्मा का कहीं मन्दिर न बनेगा और चमेली किसी मन्दिर में पूजा में न चढ़ाई जायगी।"

नफासत हसन बोला—"मगर यह तो नया ज़माना है। अब तो शायद ब्रह्मा का मन्दिर बन जाय कहीं और मेरा यकीन है अगर ब्रह्मा पर कोई फूल चढ़ेगा तो वह चमेली का फूल ही होगा।"

नफासत हसन ने उस समय यही सोचा होगा कि यद्यपि अब तक वह स्वयं एक ब्रह्मा ही है, क्योंकि उसके प्रकाशक ने उसकी कहानियों का वृहत् संग्रह प्रकाशित करने से अभी तक संकोच ही किया है। पर जैसे ही यह पुस्तक प्रकाशित होगी उसकी ख्याति के वास्तविक मन्दिर का निर्माण होते देर न लगेगी और इस मन्दिर में चमेली के ही फूल उस पर चढ़ाये जाया करेंगे।

अपने सम्बन्ध में इस कदर गलतफ़हमी रखने में उसके दो-चार गहरे दोस्तों का ही हाथ था। उनका विचार था कि उषा के

घूंघट खोलने से पहले की सारी कालिमा और लालिमा, अँधियारे और उजियाले की काना-फूसियां—उसके स्वभाव में उल्लेखनीय हैं और यदि वह आरम्भ में रूसी कहानियों के अनुवाद में अपनी उठती जवानी का ज़ोर लगाने के स्थान पर मौलिक कहानियाँ लिखने की ओर अग्रसर हुआ होता तो आज उसका नाम प्रथम कोटि के प्रगतिशील कहानी-लेखकों में गिना जाता। उनका यह भी ख़याल था कि अब भी गिरे हुए बेरों का कुछ नहीं बिगड़ा। यदि यह शत-प्रतिशत प्रगतिशील कहानी-लेखक शत-प्रतिशत तिकड़मबाज़ भी होता गया तो वह निस्सन्देह हिन्दुस्तान भर के कहानी-साहित्य की चोटी पर नज़र आयगा।

एक बार मित्रों ने उसे बताया कि वह बड़ा स्पष्टवादी है और स्वप्नों में भी यह विचार उसका पीछा करने लगा कि निस्सन्देह वह बड़ा स्पष्टवादी है। यही वह गुण है जो शत-प्रतिशत मौलिक कहानी-लेखक को जीवन के अध्ययन में वास्तविक सहायता दे सकता है। जब इस नौकरी के लिए उसने प्रार्थना-पत्र भेजा तो उससे पूछा गया कि उसने किस विषय में अपना ज्ञान चरम सीमा तक पहुँचाया है। निस्संकोच उसने लिख भेजा—"मैंने अपने जीवन का अधिकतर समय वेश्याओं का अध्ययन करने में गुज़ार दिया है।" यद्यपि इस स्पष्टवादिता से कहीं अधिक एक सिफ़ारिश ने ही उसे यह नौकरी दिलाने में मदद दी थी, पर वह नये मिलनेवालों के सम्मुख स्पष्टवादिता की चर्चा किया करता था। स्पष्टवादिता—शत-प्रतिशत स्पष्टवादिता। मैंने सोचा शायद इस स्पष्टवादिता की सीमा ने घर की दीवारों तक पैर न फैलाये होंगे। घर में आकर तो प्रायः बड़े-बड़े प्रगतिशील लेखक भी भीगी बिल्ली बनने पर मजबूर हो जाते हैं।

यह ठीक है कि उसकी प्रगतिशीलता बहुत हद तक नग्न वासना की चर्चा से घिरी रहती थी। पर कुछ समय से उसके

मन में यह वहम समा गया था कि वह किसी भी जीवित या निर्जीव वस्तु के चारों ओर अपनी कहानी को घुमा सकता है। अपनी एक कहानी में उसने एक पत्थर की गाथा प्रस्तुत की थी, जो एकाएक किसी अविवाहिता के उठते मचलते उरोज से टकराने के लिए व्याकुल हो उठा था। आदमी बदस्तूर आदमी है पर पत्थर अब पत्थर ही नहीं है। यह बात उसने बड़ी गहराई से लिखी थी। मनोविज्ञान की सीमाएं अब सिकुड़ी न रहेंगी, पत्थर अब पत्थर ही नहीं है, न बिजली का खम्भा बिजली का खम्भा ही। वह चाहता तो अपने सिगरेट केस में भी दिल डाल देता और इसके गिर्द मनोविज्ञान का बारीक जाल बुन देता।

उसकी भाषा न बहुत कठिन थी न बहुत आसान। यहाँ-वहाँ नई-नई उपमायें भी हाज़िर रहती थीं। अभी उसे किसी का फूला हुआ थैला देखकर गर्भवती के पेट का ध्यान आ गया, अभी किसी की मानसिक दुर्बलता उस कन्या-सी नजर आई जो आँधी में अपनी साड़ी न सँभाल पा रही हो। किसी के बोल सोडे के बुलबुले थे तो किसी की नाक चीनी की प्याली की टूँठनी-सी।

शाम हो चली थी। नफ़ासत हसन उठकर खड़ा हो गया और अपनी उँगलियों से बालों में कंघी करता हुआ छज्जे पर आ गया। निकलसन रोड पर समीप के टेलरमास्टर की दुकान में बिजली के कुमकुमे रोशन हो चुके थे। छज्जे पर खड़ा खड़ा नफ़ासत हसन बोला—

"मौलाना! चलो, लगे हाथों सरदारजी से ही मिलते आयें।"

मैं हैरानी से अपनी सीट में दुबका बैठा था। मैंने सोचा यह सरदारजी कौन हैं जिनसे मिलने के लिए नफासत हसन इतना उत्सुक नजर आता है। फिर मुझे ध्यान आया कि वह केवल अपने 'अन्तर-अन्तर के लिए' के दृष्टिकोण के अनुसार

ही मुझ से भी किसी लम्बी दाढ़ीवाले व्यक्ति से मिलना चाहता है। यद्यपि स्वयं उसके चेहरे पर दाढ़ी तो दाढ़ी-मूंछ तक का चिह्न हर दूसरे तीसरे दिन मिटा डाला जाता था। इससे पहले भी उसने एक लेखक की मूंछों को केवल इसलिए पसन्द किया था कि ये मूंछें मौलाना ने नापसन्द की थीं। मुझे विश्वास था कि यदि मौलाना ने उन मूंछों की प्रशंसा में एक-आध बात कह दी होती तो वह झट कह उठता—मौलाना! आपकी अन्धाधुन्ध पसन्द की तो हद हो चुकी है। लाहोल बिला कुव्वत! आपने भी खूब आदमियों में आदमी चुना!

ये सरदारजी कौन हैं? यह प्रश्न मेरे मन में फैलता चला गया। उनसे परिचित होने की इच्छा देखकर नफासत हसन ने मुझे भी साथ ले लिया। वह एक विचित्र मस्ती की अवस्था में सीढ़ियों से उतर रहा था। अपने पैरों को वह आवश्यकता से अधिक जोर से फेंकता था और फट-फट की आवाज से शोर पैदा करता हुआ पड़ोसियों के आराम में विघ्न डाल रहा था। इस प्रकार की हरकत को वह आजादी समझता था और वह इसे किसी भी मूल्य पर देने को तैयार न था।

एक बड़े लम्बे चौड़े बाजार में घूमते-घामते हम आखिर सरदारज़ी की दुकान में पहुंच गये। पता चला कि नफासत हसन इस्म बा मुसम्मा है[1] क्योंकि शराब की दुकान जहाँ उसने सरदारज़ी से भेंट करने का समय निश्चितकिया था सख्त बदबूदार जगह थी। मेज पर संगमरमर की सिलों पर सोडा और विस्की जमी हुई थी और हमारी सीट के समीप ही टूटे हुए आबखोरों का अम्बार लग रहा था। बगल में एक अधेड़ उमर का आदमी अपनी टांगें एक टूटी-सी आलमारी के ऊपर

---

१ यथा नामः तथा गुणः

टिकाये अपना मुँह पूरी तरह खोले बेहोश पड़ा था। आबखोरों के इतना समीप होने के कारण उसका खुला हुआ मुँह एक आबखोरा ही तो दिखाई देता था। एक क्षण के लिए मुझे गुमान हुआ कि नफासत हसन इसी व्यक्ति से मिलने आया है, मानो अपने आपसे, अपने सुन्दर नाम से न्याय करने आया है। थोड़ी देर के बाद नफासत हसन ने अपनी रूखी आवाज से, जिससे हमेशा की तरह खामखाह रन्दा चलने का गुमान होता था, पुकारा—"ओ मियां जुम्मा! लाओ तो सरदारजी को।"

मियां जुम्मा एक झाड़न से बोतल साफ़ कर रहा था। दिन के समय यह इसी झाड़न से सड़क पर से उड़कर आनेवाली गर्द को शीशों में पड़ी हुई पेस्ट्री या आबखोरों के बीच में तने हुए जालों को साफ़ किया करता था। कुछ देर बाद जुम्मा ने विस्की की एक बोतल और सोडे की दो बोतलें मेज पर ला रखीं।

सरदारजी के व्यक्तित्व से परिचित होते देर न लगी। पर मैं बदस्तूर कहानियों की दुनियां में घूम रहा था। मैंने यों ही नफासत हसन से पूछ लिया—

"आपके अफ़साने तो बहुत जमा हो गये होंगे?"

उस समय तक वह सोडा और विस्की को मिला चुका था। मैंने सरदारजी से परिचित होने से इन्कार कर दिया था। इसलिये उसने और मौलाना ने ग्लास टकराये और अपने-अपने मुंह से लगा लिये। एक घूंट गले से नीचे उतारते हुए बोला—

"मैं अफ़साने कभी इकट्ठे नहीं करता। मेरे अफ़साने कबूतर के बच्चे हैं जिन्हें मैं लिखता हूँ और कहता हूँ—ओ कबूतर के बच्चो! उड़ जाओ और वे उड़ जाते हैं।"

इस उपमा की मैंने बहुत प्रशंसा की। सच पूछो तो उस समय मेरे मन में आयन्स्टीन के सापेक्षवाद का सिद्धान्त स्पष्ट

हो गया था। हर वस्तु से दूसरी वस्तु का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है—अफ़साने का कबूतर के बच्चे से, दुश्चरित्र नारी की मुस्कान का गन्दी नाली में फूटते हुए कुलकुले से, भोर की पहली किरण का अँगड़ाई लेती दीवार से, नफ़ासत हसन का चर्खे से......

उस समय मैं सोचने लगा ये उपमाएं, विचित्र और खींचातानी द्वारा प्रस्तुत की हुई उपमाएं, इस महामहिम लेखक के मस्तिष्क में कहां से जन्म लेती हैं। फिर मुझे झट ख़याल आया कि यह तो एक सीधी-सादी-सी क्रिया है। स्वयं नफ़ासत हसन ने मुझे बताया था कि उसे कब्ज़ की शिकायत कभी नहीं होती। कुछ लेखक तो सख्त कब्ज के बीमार नज़र आते हैं। बेचारे बहुत जोर लगाकर लिखते हैं। मैंने सोचा इस लिहाज से तो नफ़ासत हसन हर रोज दूध के साथ अत्रीफल जुमानी खाता है। यही कारण है कि वह पत्थर, बुलबुले, रघुवीर पहलवान, पुस्तक, मेज़, कुर्सी, कलम-दवात अर्थात् दुनिया भर की हर चीज़ पर लिखकर इनके संग्रहों के नाम दौड़ो, भागो, रोओ, पीटो रख सकता है।

पर मैं बहुत देर तक इन अफ़सानों की दुनिया में न रह सका। उस समय तक दोनों लेखक विस्की की बोतल आधी के लगभग खतम कर चुके थे। सहसा उनके विचार में किस्म-किस्म की शराब मिलाकर पीने की धुन समाई। जुम्मन मियां ने बहुत-सी बोतलों से एक-एक पैग उँडेला और फिर सब को विस्की में उँडेल दिया। उस समय मौलाना शराब में अपने को खो रहे थे। शायद उन्होंने इसीलिए नफ़ासत हसन के साहित्यिक चमत्कारों को सराहना चाहा और पैग गले से नीचे उतारते हुए उसे थपकी दी और बोले—

"शाबाश! बरखुरदार, लिखे जाओ।"

नफासत हसन जो सरदारजी के मकान के वातावरण से बहुत परिचित था और जो बिना बौखलाये बहुत-से पैग पी सकता था। बोला—

"बस-बस, मौलाना! यही एक बात है जो मुझे सिरे से नापसन्द है। इस बेहूदा सरपरस्ती की मुझे बिल्कुल जरूरत नहीं। आपकी मदाह-ओ-ज़म[1] की मुझे मुतलक़ परवाह नहीं। समझे आप? अगर आपने मेरे अफसाने पढ़े तो इससे मेरा कुछ सँवर नहीं गया, अगर नहीं पढ़े तो कुछ बिगड़ा नहीं।"

मौलाना को इस अनुचित वार्तालाप से बहुत आश्चर्य हुआ। अपने मेजबान के कन्धे थपकते हुए बोले—"बरखुरदार, अगर तुम अफसाने लिखने की बजाय मिट्टी का तेल भी बेचा करते तो मेरे दिल में तुम्हारी ऐसी ही इज्जत होती।"

ये दोनों लेखक तो आपस में गम्भीरता से वार्तालाप कर रहे थे पर मैं इस वातावरण से बौखला-सा गया। फिर मुझे यों लगा कि ये लेखक मेरी तरह परहेजगार है और शराब वस्तुतः मैं पी रहा हूँ।

एक और पैग गले से नीचे उतारने के बाद नफासत हसन ने पापड़ का एक टुकड़ा गले में डाला और कहा—

"मौलाना! मैं लिखना चाहता हूँ। बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ। मेरी कभी किसी चीज से तसल्ली नहीं होती।"

और अभी नफासत हसन ने अपनी बात खतम भी न की थी कि मुझे खयाल आया कि तसल्ली कैसे हो सकती है। क्यों-कि उसके अफसाने तो कबूतर के बच्चे हैं, और जब तक वे कबूतर के बच्चे रहेंगे, वे फुर से नफासत हसन के पास से उड़ जायँगे। आखिर नफासत हसन ने कोई छतनारा भी तो कायम

१ प्रशंसा और निन्दा।

नहीं किया कि बेचारे कभी-कभी उस पर बैठ जायं और अपने मालिक को देख लें। अब वे अनगिनत भटकती हुई आत्माओं के समान एक असीम गगन पर फड़फड़ाते फिर रहे हैं।

नफासत हसन अपनी बातचीत को जारी रखते हुए बोला—"बस एक चीज़ लिख लूँगा, एक चीज़, तो मेरी तसल्ली हो जायगी। इसके बाद मैं मर भी जाऊं तो मैं यही समझूंगा कि मैंने ज़िन्दगी में बहुत बड़ा काम किया है।"

मौलाना के और मेरे वास्तविक और काल्पनिक नशे हिरण हो गये। हम दोनों का ध्यान उस कहानी का कथानक सुनने के लिए नफासत हसन के पतले और दुर्बल चेहरे की ओर उठ गया। नफासन हसन बोला—"मैं उन दिनों बम्बई में रहता था। मेरे मकान का एक दरवाज़ा गुसलखाने में खुलता था। इस गुसलखाने में एक दरज़ थी। बस इसी दरज़ में से मैं कुंवारी लड़कियों को नहाते हुए देखता था। अधेड़ उमर की और बूढ़ी औरतों को भी। इसके अलावा नौजवान मर्द भी नहाने आया करते थे और जैसा कि आपको मालूम है इन्सान आम जिन्दगी में वह हरकतें नहीं करता जो गुसलखाने में करता है।"

मैं इस बात को समझ न सका। पर मेरे सामने आइनस्टीन का सापेक्षवाद का सिद्धान्त था। इसीलिए मैंने जरा परवाह न की और सुनता चला गया। नफासत हसन बोला—

"बस उस गुसलखाने में नहानेवालियों और नहानेवालों के बारे में लिखकर मर जाऊं तो मुझे कोई अफ़सोस न होगा। इस अफसाने का नाम रखूंगा 'एक दरज़ में से' और मर जाऊंगा।"

मुझे नफासत हसन की इस हरकत पर बहुत हँसी आई मेरा जी चाहने लगा कि यदि मैं यह सब गाथा लिखकर मर

जाऊँ तो मुझे भी जीवन में कोई लालसा न रह जायगी।

मौलाना, जो नफ़ासत हसन की बेतुकियों को बड़े ध्यान से सुन रहे थे, कुछ न बोले। न जाने नफासत हसन के दिल में स्वतः यह विचार आया कि उसने मौलाना का अपमान किया है। वह अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। चुम्बन के लिए उसने अपना दायां गाल मौलाना के सामने पेश कर दिया। मौलाना ने प्रसाद के रूप में एक चुम्बन ले लिया। इसके बाद नफासत हसन ने बायां गाल पेश कर दिया। मौलाना के सम्मुख अब प्रसाद की समस्या नहीं रही थी पर उन्होंने चुम्बन ले लिया।

मैं उनकी परस्पर लड़ाई की सम्भावना किये बैठा था। पर सहसा मौलाना ने उठकर बड़ी निष्कपटता से छाती पर हाथ रखते हुए कहा—

"देखो भाई, अब तुम मानोगे ? मैं सोमरसट माम हूं।"

नफासत हसन ने अपनी छाती पर हाथ रखते हुए कहा—

"मैं सोमरसट माम हूँ।"

मौलाना ने कोई प्रतिकार न किया, बल्कि अपनी छाती पर हाथ रखते हुए बोले—

"मैं सोमरसट माम हूँ।"

फिर नफासत हसन की ओर संकेत करते हुए मौलाना बोले—

"तुम सोमरसट माम हो—हम दोनों सोमरसट माम हैं... जो है सोमरसट माम है......जो नहीं है वह भी सोमरसट माम है......सोमरसट माम भी सोमरसट माम है !"

स्कैंडल प्वाइंट

अब यह मूर्ति यों ही खड़ी रहेगी। एक हाथ ऊपर उठाये, मुट्ठी भींचकर अंगूठे के साथवाली अंगुली ऊपर उठाकर निर्देश का अन्दाज पैदा करते हुए आज भी यह महापुरुष कुछ कहता हुआ नजर आता है। पहले यह मूर्ति उस शहर में स्थापित थी जहां इस महापुरुष ने विदेशी हकूमत की लाठियां अपने सीने पर हँसते-हँसते बर्दाश्त की थीं। दिलीपकुमार कहना चाहता था कि शहीदों का खून हमेशा रंग लाता है और इस महापुरुष की गिनती भी सचमुच शहीदों में होनी चाहिये, क्योंकि इन्हीं लाठियों के कारण वह स्वर्ग सिधारा था। देश के बँटवारे से पहले किसे मालूम था कि यह मूर्ति अपने स्थान से हटा दी जायगी। खैर, यह अच्छा ही हुआ कि यह मूर्ति इन दोनों सड़कों के संगम पर स्थापित कर दी गई। एक सड़क रिज की ओर से आती है और दूसरी सड़क है माल रोड। शाम उतरते ही यहां हर रोज मेला लगता है। उस समय यों लगता है कि मालरोड की मछलियां सौन्दर्य और यौवन की लहरों पर इसी प्रकार तैरती रहेंगी और दोनों

सड़कों के संगम पर खड़े हुए लोग इसी प्रकार दुनिया भर के मामलात में दखल देने का यत्न करते रहेंगे। जिसे देखो देश-विदेश की घटनाओं पर उलटी-सीधी राय देना अपना फर्ज समझता है। यहां ऐसे प्रोफेसर मिलेंगे जो अपने प्रिंसिपल के विरुद्ध षड्यंत्र करने पर तुले हुए हैं। ऐसे लोग भी मिलेंगे जो पुराने मन्त्रि-मण्डल का ढांचा बदल कर नया मन्त्रिमण्डल स्थापित करने की स्कीमें सोचा करते हैं। सात वर्ष पहले जब दिलीपकुमार यहां आया था इन सड़कों के संगम पर इसी प्रकार भीड़ नजर आती थी। उन दिनों मालरोड पर अंग्रेज, यूरोपियन और एंग्लो-इन्डियन छोकरियां नाचती इठलाती सैर करती थीं तो अब उनकी जगह इसी देश की लाड़ली युवतियों ने ले ली है। खींची हुई भवों वाली कोई लड़की तेज-तेज कदमों से चलती हुई नजर आ जाती है तो दिलीपकुमार यही सोचता है कि पानी की बड़ी-बड़ी लहरों को पीछे धकेलते हुए यह मछली उसी की ओर लपकी आ रही है। पर जब लड़की आगे निकल जाती है तो वह यह सोच कर रह जाता है कि सचमुच कुछ मछलियां ऐसी भी तो होती हैं जो बड़े से बड़ा जाल तोड़ कर निकल जायँ। उस समय वह पीछे हट कर फिर से मूर्ति की ओर देखने लगता है जैसे वह इस महापुरुष के सन्देश पर विचार कर रहा हो कि देश को स्वाधीन करानेवाले वीरों की पंक्ति में इस महापुरुष का स्थान बहुत ऊंचा है इसीलिये तो यह शरीराकार मूर्ति इतने ऊंचे मंच पर स्थापित की गई है।

नये ब्याहे जोड़े मचलते-चुहलते मालरोड पर यों निकल जाते हैं जैसे कोई कलाकार अपनी विशेष शैली में चित्रपट पर रंग की तूलिका चला रहा हो। जिनके ब्याह हुए कई-कई वर्ष बीत गये वे भी नये जोड़ों के पदचिन्हों पर चलते नजर आते हैं। नीले, पीले, हरे, लाल—न जाने कैसे कैसे रंग थिरक उठते हैं। अभी

एक लड़के का एक लड़की से परिचय हुआ, अभी एक कहानी आरम्भ हो गई। फर्मायशी कहकहे मालरोड की जान हैं। जी हां, मालरोड की हर लड़की राजकुमारी नजर आती है। कल उसे और रंग पसन्द था, आज वह रंग बदल गया। कल उस की दो वेणियां थीं तो आज बर्मी फैशन का जूड़ा उसके सिर की शोभा बना हुआ है। कल फिर शायद अंग्रेजी घूंघर मालरोड के वातावरण में लहरायेंगे। इन राजकुमारियों की आंखों में आज काजल के डोरे नजर आते हैं तो कल दूसरा ही रंग मचल उठेगा। दिलीपकुमार को यों लगता है जैसे मालरोड की राजकुमारियों को अटकी हुई लहरों से कोई सहानुभूति न हो। बहते पानी की लहरें तो सदा आगे बढ़ती हैं। वह भी लपक कर मालरोड पर चलने लगता है। पाउडर-सुर्खी से लैस चेहरे मालरोड की रोशनी में सँवार-श्रृंगार की ताजगी का दम भरते हैं।

छिः छिः। इसे तो कुँवारा श्रृंगार नहीं कह सकते, जैसे कोई दिलीपकुमार के दिमाग पर नक्कारे की चोट से घोषणा कर रहा हो। बस वह वापस आकर माल और रिज के संगम पर खड़ा हो जाता है, जहां कुछ लोग देश-विदेश की आलोचना से उकता कर प्यासी आंखों से सौन्दर्य और यौवन की अठ-खेलियों का रस लेने लगते हैं।

शाम उतरते हुए सामाजिक बन्धन ढीले पड़ने लगते हैं। मालरोड की राजकुमारियां समझती हैं कि यही शहर दुनियां के जीवन का केन्द्र है। उनकी आवाजें यों टकराती हैं जैसे होटलों में प्यालियां खनकती हैं। दिलीपकुमार सोचता है यह सब श्रृंगार कहां से आया। जरूर इसकी पृष्ठभूमि में चोर बाजार की मुनाफाखोरी उभरती है। क्या यह चोर-बाजार कभी खतम भी होगा? दोनों सड़कों के संगम पर खड़े हुए लोगों में उसे

ऐसे आदमी दिखाई देते हैं जिन्होंने चोर-बाजारी में हाथ रँग लिये हैं। क्या देश की आजादी भी चोर-बाजार में बिक रही है?

इतने में सामने से एक युवक आकर दिलीपकुमार का हाथ थाम लेता है—"कहो भाई, कब आये?"

"रहने भी दो, चेतन!"—दिलीपकुमार कह उठता है—"मैं आया और तुम छिप गये।"

"कहां ठहरे हो?"

"जहां भी सिर छिपाने को जगह मिल गई। सच कहता हूँ इस भीड़-भड़क्के में मुझे तो बुरी तरह तनहाई खाये जा रही थी।"

"भई वाह। तनहाई की भी एक ही कही।"

पास से किसी की आवाज़ आरही है—"सरकार को चाहिये कि आजादी की गोलियां भर कर एक-एक शीशी सबके हाथ में थमा दे।"

चेतन पूछता है—"अब कहो, दिलीप! तुम्हें एक ही शीशी चाहिये या ज्यादा?"

दिलीपकुमार कुछ जवाब नहीं देता। सोचता है कि ज्यादह शीशियां तो चोरबाजार ही में बिक सकेंगी। चेतन हँसकर कहता है—"यह आदमी इतना भी तो नहीं जानता कि आजादी का राशन करना सब से कठिन काम है।"

दिलीपकुमार कहता है—"आज़ादी का राशन न हुआ तो बड़ी मछली छोटी मछली को बराबर खाती रहेगी। स्लोगव की कहानी तो तुमने जरूर पढ़ी होगी। छोटी मछली ने बड़ी मछली से कहा—'मुझे भूख लगी है।' बड़ी मछली बोली—'अच्छा तुम मुझे खा जाओ।' छोटी मछली ने मुंह खोला। पर उसने देखा कि बड़ी मछली इतने छोटे मुंह के अन्दर नहीं आ सकती।

हार कर बेचारी कह उठी–'अच्छा बहन, तुम ही मुझे खा जाओ।' आज हम आजाद हैं पर कहो तो आजादी का रस कितने लोग ले रहे हैं ?"

चेतन कहता है—"वह सामने बोर्ड पर प्रधान मन्त्री का चित्र नजर आ रहा है। इस बोर्ड पर प्रधान मन्त्री का सन्देश भी पढ़ लो—जनता के लिये सच्ची आजादी वही है जो उसे बेकारी और गरीबी से आजाद कर दे । अगर किसी देश में बेकारी है तो समझ लीजिये कि वहां की सामाजिक व्यवस्था में कोई न कोई कमी जरूर है......।"

"यहां तो एक नहीं बीसियों कमियां नजर आती हैं, दिलीप !"

पास से फिर किसी की आवाज आती है—"तुम भी किस आदमी की बात ले बैठे। वह तो हूबहू चीन के उस देवता के समान है जो लोगों को चीखते और मरते देखकर खुश होता है। जब भी कोई मरता है तो वह जोर से कहकहा लगाता है। और लोग हैं कि एक दूसरे को मरते देखकर भी बराबर इस देवता की पूजा किये जा रहे हैं।"

दिलीपकुमार कहना चाहता है कि यह बात तो चोर बाजार के व्यापारियों पर पूरी उतरती है। चेतन कह उठता है—"इस भीड़ में भी कैसी-कैसी बातें सुनने को मिल जाती हैं।"

एक तरफ दो दोस्त घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं—

"यकीन न आये तो डा० पट्टाभि सीतारमैय्या का लिखा हुआ 'कांग्रेस का इतिहास' पढ़ लीजिये।"

"किस पृष्ठ पर इसका जिक्र आया है।"

"अब पृष्ठ तो मुझे याद नहीं रहा। सन् १९३० के कांग्रेस आन्दोलन में किस तरह पेशावर में मेरे दो नन्हे बच्चे विदेशी हकूमत की गोलियों के निशाने बने, यह सब हाल कांग्रेस के

इतिहास में पढ़ लीजिये। आज मेरे देश में आजादी आई। पर किसे इतनी फिक्र है कि उन नन्हें शहीदों की यादगार मनाये। हां, जब तक आजादी नहीं आई थी पेशावर में बराबर उन नन्हें शहीदों की याद मनाई जाती रही।"

"हमें चाहिये कि अब उन नन्हें शहीदों की याद यहां मनायें। बल्कि सरकार को चाहिये कि आपकी राय लिया करे। पर शायद अभी वह समय नहीं आया।"

"यहां किसे इतनी फ़ुर्सत है?"

दिलीपकुमार की कल्पना में अनगिनत शहीदों के चित्र उभरते हैं। चेतन की आंखों में झांकते हुए वह कहता है—"शहीदों ने अपने खून से इस धरती को न सींचा होता तो क्या आजादी के बीज इतनी जल्दी उग सकते थे?"

चेतन पूछता है—"क्या यह वही आजादी है जिसके सपने हमारे शहीदों ने देखे थे?"

बाईं ओर खड़ा कोई कह रहा है—"अजी, सबसे पहले शरणार्थियों को फिर से बसाने का यत्न किया जाना चाहिये। सरकार को चाहये कि अपना फर्ज़ पहचाने।"

दाईं ओर कोई कह रहा है—"हिमाचल प्रदेश तो बना दिया गया और यह अच्छा ही हुआ कि छोटी-छोटी रियासतें मिलाकर एक कर दी गईं। पर क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि कुल्लू अभी तक पूर्वी पंजाब में चला आता है। हिमाचल सरकार की बागडोर मेरे हाथ में हो तो सब से पहले शिमला से कुल्लू तक लारी चलने लायक सड़क बनवा दूँ।"

दिलीपकुमार जानता है कि अभी तक तो लारी की सड़क नारकण्डा तक है। इस सड़क पर वह लारी की यात्रा कर चुका है। ये लारियां हिमाचल सरकार की ओर से चलती हैं। दिन में तीन लारियां उधर जाती हैं और वही लारियां उधर से इधर

आती हैं। सड़क पर इतने घुमाव हैं कि मामूली ड्राइवर तो लारी को एकदम खड्ड में गिरा दे। चेतन की आंखों में झांकते हुए वह कहता है—"कई वर्ष हुए मैंने कुल्लू से शिमला तक पैदल यात्रा की थी। अब नारकण्डा से आगे कुल्लू तक लारी चलने लगे तो मजा आ जाय।"

चेतन कहता है—"तुम्हारा मतलब है कि सभ्यता को कुल्लू तक पहुंचने के लिये पैदल चलने का कष्ट न उठाना पड़े!"

दिलीपकुमार फर्मायशी कहकहा लगा कर कहता है—"वैसे कांगड़ा की ओर से तो कुल्लू तक लारी जाती है और इस पर सवार होकर नई सभ्यता पहले ही कुल्लू पहुंच चुकी है।"

पास से आवाज आती है—"जैसे गुजरात में गुजराती है और बंगाल में बंगाली वैसे ही पूर्वी पंजाब में पंजाबी है। जिसे पंजाबी स्वीकार नहीं वह पूर्वी पंजाब से चला जाय।"

सामने से दूसरा साथी जवाब देता है—"क्यों न सभी जबानें देवनागरी में लिखी जायें। एक लिपि होने से देश की एकता कायम हो जायगी।"

"वाह! कल को तुम कहोगे "कि सब प्रान्तीय भाषाओं को खतम कर दिया जाय और एक राष्ट्रभाषा ही रह जाय। पर हम पंजाबी को तो बिल्कुल खतम न होने देंगे।"

"जो लोग रोमन लिपि की बात करते हैं वे यह भूल जाते हैं कि इससे तो अंग्रेजी की गुलामी और भी पक्की हो जायगी। वैसे हम अंग्रेजी भी सीखेंगे क्योंकि दुनियां से रिश्ता जोड़ने के लिये अंग्रेजी के बिना गुजारा नहीं।"

"यह तो वही बात हुई कि गुड़ खाना और गुलगुलों से परहेज। खैर छोड़िये, राष्ट्रभाषा के लिए रोमन लिपि सीखिये या नागरी लिपि। हमारी गुरुमुखी लिपि पंजाबी के लिए रहने दीजिये।"

दिलीपकुमार कह उठता है—"जीवन ही खतम हो गया तो भाषा उस लेबल के समान होगी जो खाली शीशी पर लगा हो।"

पास से कोई कहता है—"कल मिस रूपा का ब्याह था, तुम कल वहां क्यों नहीं आये ?"

सामने से उस आदमी का साथी जवाब देता है—"भई, मैं नहीं आ सका। हां मैंने सुना है—"

"क्या सुना है ?"

"यही कि पहले इस फरफर अंग्रेजी बोलनेवाली लड़की की सिविल मैरेज हुई और दोबारा अग्नि देवता के सामने बैठकर बाकायदा मन्त्रों के साथ ब्याह रचाया गया।"

"जी हां ! रूपा का दोबारा ब्याह हुआ। अजब मज़ाक है।"

"भई, बात यह है कि हम अभी संक्रान्ति-काल में से गुजर रहे हैं। पुरानी सभ्यता पर हमारा विश्वास नहीं रहा। नई सभ्यता है कि इससे हमारी भावनाओं की पूरी तरह तसल्ली नहीं हो पाती। इसीलिये तो दो-दो ब्याह रचाये जाते हैं। हां भई, असल ब्याह तो यही है कि लड़के-लड़की के दिल मिल जायें।"

"खैर भई, छोड़ो यह बहस। बस इतना बता दो कि किस तरह रूपा ने अपने दूल्हे के गले में वर-माला पहनाई थी ?"

"स्वयम्वर की याद ताजी हो गई थी। यों मालूम होता था कि दूल्हा ने अभी-अभी कोई धनुष-बाण उठाकर वीरता का प्रमाण दिया है या फिर तेल के कढ़ाये में प्रतिबिम्ब देखकर ऊपर चर्खी पर घूमती हुई मछली को बींध डाला है।"

दिलीपकुमार चेतन की तरफ घूर कर कहता है—"तुमने भी तो रूपा को देखा होगा। उसमें ऐसी क्या खूबी है ?"

चेतन जवाब देता है—"रूपा इस शहर की सबसे खूबसूरत लड़की है। अब की उसे मिस १९४९ की पदवी मिल

चुकी है। तीन दिन हुए मैंने उसे रिक्शा में जाते देखा। सच कहता हूँ वह उस समय रूपा बिलकुल गुड़िया मालूम हो रही थी—एकदम चोरबाजार की गुड़िया।"

दिलीपकुमार पूछता है—"क्यों रूपा बहुत ही भड़कीले कपड़े पहनती है ?"

चारों ओर से आवाजें आ रही हैं जैसे किसी राग का ठिठरा हुआ आलाप उभर रहा हो। कभी यों लगता है कि शहद की मक्खियाँ तेजी से भिनभिनाने लगीं। कोई रुककर बोलता है तो किसी के मुँह से शब्द उछलकर निकलते हैं।

चेतन कहता है—"आज तो आवाज़ पर आवाज़ जमती चली जा रही है जैसे वर्फ के दिनों में होता है। हाँ भई, तुम बर्फ गिरने के दिनों में यहाँ आओ तो मजा रहे।"

दिलीपकुमार पूछता है—"उन दिनों भी क्या यहाँ इसी तरह भीड़ नजर आती है ?"

"उन दिनों भीड़ नहीं होती, दिलीप ! उन दिनों शहर के लोग एक दूसरे को फिर से पहचानने लगते हैं।"

पास से कोई कह उठता है—"सुना है पूर्वी पंजाब यूनिवर्सिटी डलहौज़ी जा रही है।"

सामने से इस आदमी का साथी जवाब देता है—"और डलहौज़ी से शायद इसे चम्बा जाना पड़े।"

दोनों साथी हँस पड़ते हैं। एक कहता है—"पूर्वी पंजाब यूनिवर्सिटी भी एक शरणार्थिनी है। पहले यह बेचारी अच्छी भली अपने घर में रहती थी। अब इसका कोई ठिकाना नहीं।"

दूसरा साथी कहता है—"चम्बा तो हिमाचल प्रदेश में है। वहाँ कहाँ जायेगी बेचारी पूर्वी पंजाब यूनिवर्सिटी ?"

दिलीपकुमार चेतन की आँखों में घूरकर कहता है—"रूपा भी तो इसी यूनिवर्सिटी की उपज होगी।"

बनकर जगह-जगह भटकना पड़ता।"

सामने से इस आदमी का साथी कह उठता है—"बीस लाख में सरकार को यह सौदा महँगा नहीं पड़ा। यह तो समझो मुफ्त का माल हाथ आ गया।"

सामने से दूसरा कहता है—"तुम इसे मुफ्त का माल कहते हो। जब यह क्लब बनी होगी तो उसे सरकार से यह जमीन मुफ्त में मिली होगी। मैं तो समझता हूँ कि इसकी इमारतों पर भी सरकारी खजाने से बड़ी-बड़ी रकमें खर्च हुई होंगी। मैंने सुना है इस क्लब के डेढ़ सौ मेम्बर थे। घटते-घटते इनकी संख्या चालीस के करीब रह गई थी। उन्होंने समझ लिया अंग्रेज इस देश को छोड़कर जा रहे हैं तो वे भी यहाँ कैसे रह सकते हैं? उन्होंने बीस लाख में यह सौदा कर लिया।"

"इस हिसाब से तो हर मेम्बर को पचास-पचास हजार रुपये मिल गये होंगे।"

"इस क्लब की लायब्रेरी पूर्वी पंजाब यूनिवर्सिटी ने खरीद ली। पर सुना है कि अच्छी-अच्छी पुस्तकें तो क्लब के मेम्बर साथ लेते गये।"

चेतन कह उठता है—"रूपा से मेरा ब्याह हो जाता तो तुम देखते कि तुम्हारी भाबी मेहमान की कितनी खातिर करती है। एक दिन हम इकट्ठे फिल्म देखने गये। रूपा को यह फिल्म पसन्द न थी। बोली—'चेतन, बाहर चलते हैं। हम धुन्ध में सैर करेंगे। धुन्ध में मेरा चेहरा लाल हो जाता है। धुन्ध में आक्सीजन होती है जो मुझे बहुत पसन्द है।' बस भई, फ़िल्म खतम होने से पहले ही हम सिनेमा हाउस से बाहर निकल आये। बाहर धुन्ध थी। हम दूर निकल गये। मैंने रूपा के कान में कह दिया—'रूपा तुम धुन्धों की राजकुमारी हो।' वह बोली—'तुम तो कवि हो, चेतन! मुझे कविता बहुत अच्छी

लगती है।" भई, वह दिन मुझे सदा याद रहेगा।"

"और उसने एक कवि को छोड़कर एक आई० सी० एस० से ब्याह करा लिया। अब तुम रूपा को कभी क्षमा नहीं कर सकोगे।"

"तुमने रूपा को देखा नहीं, दिलीप ! माल रोड पर चलने-वाली लड़कियों में एक भी तो रूपा के मुकाबले में नहीं ठहर सकती।"

पास से आवाज आती है—"भाकड़ा बाँध का काम ज़ोर से चल रहा है।"

सामने से इस आदमी का साथी जवाब देता है—"अगर इस बाँध के बनने तक शरणार्थी जिन्दा रहे तो वे भी इससे लाभ उठा सकेंगे।"

कोई कह रहा है—"रुपये की कीमत चार आने भी नहीं रह गई, यही मुसीबत है।"

सामने से दूसरा आदमी जवाब देता है—"रुपये की कीमत भले ही घट कर तीन आने रह जाय। पर किसी तरह किराये पर मकान मिलने लगें, फिर मुझे पूरा आराम मिल सकता है।"

पास खड़ा एक सफेदपोश कह रहा है—"हिन्दुस्तानी फिल्मों का स्टैन्डर्ड बहुत गिर गया।"

दूसरा आदमी कह उठता है—"सरकार को चाहिये फिल्म उद्योग को अपने हाथ में ले ले जैसे हिमाचल सरकार ने नारकण्डे को जानेवाली लारियों का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है।"

दूसरी ओर कोई कह रहा है—"नौकरी सिफ़ारिश के बगैर नहीं मिलती। मुल्क में बुरा हाल है।"

सामने से कोई जवाब देता है—"आज राष्ट्रपिता होते तो जरूर कोई नया मन्त्र फूंकते।"

बाईं ओर से आवाज आ रही है—"यहां भी तो एक उप-

चुनाव होने जा रहा है।"

पासवाला आदमी जवाब देता है—"देखें ऊँट किस करवट बैठता है ?"

"अजी वह तो मुझे सब मालूम है।"

"तो बताओ कौन सफल होगा ?"

"अरे भाई जब तक शिक्षा आम नहीं हो जाती वोट बिकते रहेंगे। जनता तो हमेशा भेड़ों का झुण्ड रही है। भेड़ों का काम है भेंड़ का पीछे चलना। इस हालत को बदलते बहुत देर लगेगी।"

चेतन कहता है—"यह सब एक ही आरकैस्ट्रा की आवाजें हैं।"

दिलीप जवाब देता है—"पर कभी-कभी यह आरकैस्ट्रा बेसुरा होने लगता है।"

पास से किसी की आवाज़ आती है—"इन्सान बहुत कमीना हो गया।"

सामने से इस आदमी का साथी जवाब देता है—"आजादी तो आई, पर नेक नीयती चली गई।"

फिर जैसे कोई भिनभिनाते हुए कहता है "होटलों में अब पुराने बैरे पुराने ग्राहकों का जरा लिहाज नहीं करते, क्योंकि नये ग्राहक ज्यादह टिप करते हैं।"

इस टोली का तीसरा साथी कह उठता है—"यह टिप करने की बीमारी अंग्रेजों के साथ आई है। अंग्रेज चले गये पर यह बीमारी हमेशा यहां रहेगी।"

चेतन इस शोर में घुटन-सी अनुभव करता है। इस भीड़ में कुछ आवाजें घिसटती, लँगड़ाती-सी हैं तो कुछ ऐसी जो थकान के मारे बोझल-सी हो रही हैं। जाने क्या सोचकर वह कह उठता है—"मालरोड की राजकुमारियों को एक-एक करके

देख जाओ। यहां दूसरी रूपा नहीं मिल सकती।"

दिलीप जवाब देता है—"अब रूपा को भूल जाओ, चेतन !"

दिलीप की बात तीर की तरह चेतन के दिल को चीरकर निकल जाती है। वह उकताकर कह उठता है—"अब तो भीड़ छिदरी हो रही है।"

दिलीप कहता है—"हां अब आरकैस्ट्रा के सुर थक चुके हैं। अब तो मालरोड पर भी गिने-चुने जोड़े रह गये।"

चेतन जवाब देता है—"यह जिन्दगी है या बासी रोटी ?"

दिलीप पूछता है—"इसलिए कि रूपा अब हमेशा के लिए किसी और की हो गई।"

"हमेशा के लिए तो खैर नहीं कह सकते क्योंकि सिविल मैरेज में पत्नी को यह अधिकार है कि वह पति से तलाक ले सके।"

"तुम्हारा खयाल गलत है, चेतन ! अब रूपा हमेशा अपने आई० सी० एस० पति की पत्नी रहेगी।"

चेतन इसका कुछ जवाब नहीं देता। खोखली नज़र से दिलीप की ओर देखकर कह उठता है—"कल मैं तुम्हें अपने यहां ले चलूंगा। हमारे पास बहुत बड़ा फ्लैट है। पर मैं उसे सजाकर नहीं रख सकता। रूपा को यही शिकायत रही कि इतने अच्छे मकान को हमने फिजूल-सा मकान बना रखा है। हां, मेरा मन रखने के लिए एक बार उसने हमारे फ्लैट में मेरे साथ चाय पीते हुए कहा था—'तुम कवि हो, कलाकार हो। यह मेरी भूल है कि तुम्हारे कमरे में मैं तुम्हारे व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब देखने का यत्न करूं। ठीक है न, दिलीप !"

दिलीप आश्चर्य से कहता है—"तुमने जरूर रूपा की प्रशंसा में कोई कविता लिखी होगी।"

चेतन खुशी से उछलकर जवाब देता है—"आज से पांच साल पहले की बात है, वल्कि पांच साल से कुछ ऊपर हो गये। यहां नौ-नौ फुट बर्फ पड़ रही थी। जिस दिन बर्फ पड़नी शुरू हुई मैं रूपा के यहां चाय पी रहा था। बस रूपा ने सौ-सौ बहाने किये और मुझे वहीं रुकना पड़ा। मालूम होता था कि बम्बई एक्सप्रेस की रफ्तार से बर्फ पड़ रही है। पहले यह बर्फ बहुत सुन्दर मालूम होती थी। रूपा ने अपने माता-पिता पर मेरी खूब धाक जमा रखी थी। वे समझते थे यदि रूपा एम० ए० में पास हो सकती है तो केवल मेरी सहायता से। बस यह समझ लो, दिलीप, कि चार दिन और चार रातें मैं वहीं रुका रहा। अँगीठी में बराबर आग जलती रही। पानी के नल बन्द हो गये थे। इससे कुछ कम तकलीफ नहीं उठानी पड़ी थी। पर रूपा सदा मेरे सामने बैठे रहती। मैंने कहा—'रूपा, अब बर्फ बन्द न होगी और शायद हम इस मकान समेत बर्फ में दफन हो जायँगे। वह सामने बैठी हमेशा हँसती रही। बस दिलीप, इन्हीं भावनाओं को मैंने एक कविता में अंकित कर दिया। रूपा ने वह कविता सुनी और एक दम फड़क उठी। उसके चेहरे पर जैसे सौ-सौ फूल खिल उठे हों। रूपा मुझे कभी न भूल सकेगी, इसका मुझे पूरा विश्वास है, दिलीप !"

दिलीप चाहता है कि चेतन से वह कविता सुनाने की फर्मायश करे। पर रिज पर धुन्ध छा रही है। नीचे माल की ओर भी धुन्ध ही धुन्ध नजर आने लगती है। आस-पास की इमारतें धुन्ध की चांदर ओढ़ रही हैं। बिजली की बत्तियां भी धीरे-धीरे इस धुन्ध के नीचे छुपती जा रही हैं। चेतन कहता है—"कितने ही बरस क्यों न बीत जायँ, कितनी ही गहरी धुन्ध क्यों न छा जाय, रूपा का चेहरा हमेशा मेरे सामने रहेगा।"

मालरोड पर एक भी औरत नजर नहीं आती। रिज और

माल के संगम पर खड़े हुए लोग भी गायब हो चुके हैं। हां, उस महापुरुष की मूर्ति बराबर अपने ऊंचे मंच पर खड़ी है।

दिलीप कहता है—"क्यों, चेतन तुम अपनी कविता मुझे दे सकते हो?"

चेतन पूछता है—"क्यों तुम इसे क्या करोगे?"

"अरे भई, इसका अंग्रेजी अनुवाद कर डालूँगा।"

"इससे क्या लाभ?"

"बस, यह तुम आज तक नहीं समझ सके। सुनो, मैं समझाता हूँ।"

"कहो, कहो, चेतन!"

"यह अनुवाद किसी विलायती मैगज़ीन में छपेगा तो तुम्हें दो लाभ होंगे। विलायत में तुम्हारा नाम हो जायगा, और दूसरा लाभ यह होगा कि जब रूपा इसे अपने ड्राइंग रूम में बैठकर पढ़ेगी तो उसे फिर से तुम्हारी याद आजायगी। हाँ, उस मैगज़ीन की एक कापी तुम्हें खुद ही उसके पास भेजनी होगी!"

चेतन कुछ उत्तर नहीं देता। दिलीप के कान के पास मुंह ले जाकर वह पूछता है—"चेतन, यह तो तुमने बताया ही नहीं कि कहां चलो ठहरे हो। खैर, आज मेरे यहां रहना। कल सुबह तुम्हारा सामान मंगवा लेंगे।"

दिलीप हँसकर कहता है—"मैं रूपा की तरह तुम्हारे मकान में सुक्स नहीं ढूँढूँगा।"

चेतन इसके जवाब में कुछ नहीं कहता। थोड़ी खामोशी के बाद वह कह उठता है—"भले आदमियों ने अब रिंज और माल के संगम का नाम भी बदल दिया है। पर भई दिलीप, नाम बदलने से क्या होता है? यहां भीड़ का आरकैस्ट्रा इसी तरह बजता रहेगा।

दिलीप कहता है "अब चलना चाहिये।"

चेतन चुप रहता है। वह घूर कर दिलीप की तरफ देखते हुए जल्दी-जल्दी कदम उठाता है, जैसे कहना चाहता हो कि जहन्नुम में जाय माल और रिज के संगम की भीड़ और उसका आरकैस्ट्रा। आज खामखाह यहां खड़े-खड़े इतनी देर हो गई। धुन्ध भी थोड़ी देर के लिए अच्छी लगती है।

दिलीप भी चेतन के पीछे-पीछे चल पड़ता है और वे दूर निकल जाते हैं जहां से न स्कैंडल प्वाइंट नजर आता है न उस महापुरुष की मूर्ति, जिसने देश की आजादी के लिए हँसते-हँसते अपने सीने पर विदेशी हकूमत की लाठियां सह ली थीं।

टिकुली खो गई

नई दिल्ली में उस दिन उस एकदम अपरिचित व्यक्ति से भेंट हुई। अब शुरू ही में यह मत पूछिए कि इस भेंट की पहली प्रतिक्रिया मुझ पर क्या हुई। पर साहब, जब बताना ही ठहरा तो संकोच कैसा ? लीजिए, सारी बात साफ़-साफ़ सुनिए।

शक्ल-सूरत से उसने मुझे बिल्कुल प्रभावित न किया। उसका लिबास भी तो एकदम मैला था। मेरा अपना लिबास ही कौन-सा उजला था! इसलिए उसके लिबास पर नाक-भौं चढ़ाने का तो भला मुझे क्या हक़ था। खैर साहब, जब उसने मुझे प्रणाम किया तो मैं खड़ा हो गया।

छूटते ही उसने पूछ लिया—"मेरी कोई रचना आप छाप सकेंगे ?"

मैंने सोचा, अब फँस गये। पर झट सँभलकर मैंने कहा—"अब यह तो उस रचना को देखकर ही कहा जा सकता है।"

शायद इस व्यक्ति को इस उत्तर की भी आशा न थी। बोला—"मैं अपना लेख आपको अवश्य भेजूँगा, आप उसे

यों ही तो नहीं फेंक देंगे ?"

यों ही से उसका भाव था पढ़े बिना ही। इससे मेरे 'अहं' को धक्का अवश्य लगा। मैंने सफ़ाई पेश करते हुए कहा—"यों ही फेंकने की तो कोई बात नहीं।"

वह बोला—"आप शायद ऐसा नहीं करते। पर कोई भी सम्पादक ऐसा नहीं करता, यह तो आप नहीं कह सकते।"

मैंने कुछ कहे बिना केवल सिर हिलाकर यह भाव प्रकट किया कि जो भी ऐसा करता है सचमुच बुरा करता है।

ज्योंही मैं आज्ञा लेकर चलने लगा, वह व्यक्ति लपककर मेरे साथ-साथ हो लिया। उस समय मैं किसी से कोई नीरस-सी भेंट करने के लिए तैयार नहीं था। पर मुझमें इतना साहस भी तो नहीं था कि साफ़-साफ़ कह देता। मैंने सोचा, थोड़ी देर साथ चलने के बाद वह स्वयं आज्ञा लेकर किसी ओर चला जायगा।

कभी मैं अपने मैले वस्त्रोंवाले साथी की ओर देखता, जो कनाट प्लेस की दुकानों के बरांडे में चलते समय ज़रा भी नहीं हिचकिचा रहा था, और कभी अपने वस्त्रों की ओर देखता, जो आज उतने उजले नहीं थे जितने कि मैं स्वयं चाहता था।

पुस्तकों के एक स्टाल के सामने मैं रुक गया। मेरा ख़याल था मेरे साथी में इतना धैर्य नहीं होगा कि खड़ा-खड़ा मेरी प्रतीक्षा करता रहे। पर वह तो उल्टा और भी दिलचस्पी लेने लगा। एक-दो पुस्तकों की ओर उँगली उठाकर उसने कहा—"अभी हमारे देश में इतनी सुन्दर पुस्तकें नहीं छपतीं।"

मैंने कहा—"ये पुस्तकें सुन्दर तो हैं ही, साथ ही बहुत महँगी भी नहीं।"

वह बोला—"वे दिन जाने अभी कितनी दूर हैं, जब हम

भी इतनी सुन्दर और सस्ती पुस्तकें छाप सकेंगे।"

उसकी बात इतनी फजूल तो थी नहीं कि मैं ख्वामख्वाह नाक-भौं चढ़ाता। मैंने हँसकर उसकी दाद दी और कहा—"सचमुच वे दिन अभी बहुत दूर हैं।"

उस दिन मेरी जेब में इतने पैसे भी तो नहीं थे कि कोई सस्ती-सी पुस्तक ही खरीद सकता। इस अवस्था में कोई और होता, तो खिसिया जाता। पर मैं देर तक पुस्तकें उलट-पुलटकर देखता रहा। मैंने सोच लिया था कि अपने अपरिचित साथी से पीछा छुड़ाने का इससे आसान उपाय और कोई नहीं हो सकता।

वह जमकर खड़ा रहा। उसने किसी पुस्तक को छुआ तक नहीं था। मैंने सोचा कि वह समझदार है, नहीं तो यक न शुद दो शुद वाली बात होती और बुकस्टाल का शरणार्थी दुकान-दार हमें रास्ता दिखाने पर मजबूर हो जाता। एक-दो बार मैंने पुस्तकों से ध्यान हटाकर उसकी ओर देखा। जाने वह क्या सोच रहा था। अभी तक मैं उससे इतना भी तो नहीं पूछ पाया था कि वह कहाँ काम करता है? यह प्रश्न मेरे ओठों तक आया अवश्य। पर मैंने मन-ही-मन अपने हीनभाव को कोसना शुरू कर दिया—यह कौन-सा शिष्टाचार है? कोई कहीं भी काम करता हो, इससे मेरा क्या मतलब। कोई कहीं छोटे-से-छोटा काम भी क्यों न कर रहा हो, आखिर उसे भरे बाज़ार में आड़े हाथों लेने का मुझे क्या हक़ है? वैसे शक्ल-सूरत से वह किसी गाँव का रहनेवाला मालूम होता था। किस गाँव में उसका जन्म हुआ? फिर उसने अपना गाँव क्यों छोड़ दिया? ये प्रश्न अवश्य पूछने-योग्य थे। पर मैं चुप रहा और सोचने लगा कि आखिर मैं भी तो गाँव में उत्पन्न हुआ था, मैंने भी तो अपना गाँव छोड़ दिया।

यह स्टाल ऐसे स्थान पर था, जहाँ से बरांडा एकदम दूसरी ओर को मुड़ जाता था। इसलिए यहाँ से गुज़रते समय हर किसी का ध्यान हमारी ओर उठ जाता। एकाएक मुझे यों लगा कि यह भी अच्छा हुआ। अपने साथी की ओर मैंने गर्व से देखा। उसकी आँखों में मानो किसी सुदूर जनपद का गाँव झाँक रहा था। कोई और समय होता तो मैं उससे गले मिलता और ऊँची आवाज़ में कह उठता कि वह तो सचमुच उन सभी गाँवों का प्रतिनिधि है, जहाँ इस विशाल देश की जनता रहती है। वह एकटक मेरी ओर देख रहा था। मुझे अपने ऊपर क्रोध आने लगा, जैसे मैंने जन-मन के इस मूर्त्तिमान प्रतीक का अपमान किया हो और मुझे अब उससे क्षमा-याचना करनी चाहिए।

मेरे हाथ में यूरोपियन चित्रकला का एक सुन्दर संकलन था। इन चित्रों में यूरोप के ग्राम्य जीवन के कुछ चित्र भी थे, जिन्हें देखते हुए मुझे अपने देश के गाँवों की याद आ गई। सचमुच इन चित्रों में कुछ चेहरे तो ऐसे थे, जो परिचित-से मालूम होते थे। मैंने अपने अपरिचित साथी को एक युवती का चित्र दिखाते हुए झटपट पूछ लिया—"देखने में कैसी लगती है यह युवती ?"

वह शायद इस प्रकार के प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। उसने झेंपकर दूसरी ओर मुँह फेर लिया, जैसे मैंने उसकी दुखती रग पर हाथ रख दिया हो। मुँह फेरते हुए वह कह उठा—"मुझे तो मालूम नहीं, यह कहाँ की युवती है। उससे बात करूँ तो किस भाषा में ?"

मैं कहना चाहता था कि आँखों की भाषा तो देश-देश में एक समान है। फिर मैंने पूछ लिया—"कवि ने कहा है कि काली आँखों को अनुवाद की जरूरत नहीं, तुमने नहीं सुनी यह बात ?"

वह बोला—"किस कवि ने कहा है ?"

मेरे दिमाग़ पर जैसे किसी ने मुक्का दे मारा हो। मैंने सोचा, किस अनाड़ी से वास्ता पड़ा है। बात को समझने का तो यत्न ही नहीं करता। कोई पूछे कि अरे मूर्ख, कवि का नाम जान लेने से कौन-सा अन्तर पड़ जायगा ? अरे, तेल देखो, तेल की धार देखो। कवि के कहने का भाव है कि आँखें स्वयं आँखों की भाषा समझती हैं। उन्हें किसी दुभाषिये की ज़रूरत नहीं। मेरी आँखें उस युवती के चित्र पर गड़ी थीं। जैसे यह चित्र मुझ से बोल रहा हो, जैसे इस युवती की नीली आँखें मुझ से कह रही हों—'हमें प्यार करो, नहीं तो हम तुम्हें खा लेंगी।' झट मुझे काली आँखों की भाषा का ध्यान आ गया। काली आँखें तो यों कहती थीं कि हमें प्रेम करो, नहीं तो हम मर जायँगी।

उसी समय बरांडे से एक नीली आँखोंवाली युवती गुज़र गई, जिसने मुड़कर मेरी ओर देखा। जी हाँ, जाने वह क्या कहना चाहती थी। मुझमें इतना साहस तो था नहीं कि लपक कर उसके पास चला जाऊँ और झट पूछ लूँ कि मैं उसकी क्या सेवा कर सकता हूँ, न मैं अपने अपरिचित साथी से ही कह सकता था कि वह मेरी ओर से उस युवती से पूछ आवे कि वह इतनी चकित क्यों नज़र आ रही है ?

खाली जेब में मेरा हाथ अनजाने ही दो-तीन बार चला गया। पर दुकानदार के लिए वहां क्या रखा था ? मैंने बहुत संजीदगी से कहा—"यह पुस्तक मेरे लिए अलग रख दो, अगली बार मैं इसे ज़रूर ले लूंगा !"

दुकानदार ने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली। मुंह से तो वह कुछ न बोला, पर उसके चेहरे से यही मालूम हो रहा था कि उसने बहुत बुरा मनाया है। जैसे वह कह रहा हो—चलो, रास्ता नापो। बहुत देख लीं पुस्तकें। तुम्हारे-जैसे बीसियों आते हैं।

अब मैं किस-किससे झगड़ा मोल लूँ ? जिसे पुस्तक खरीदनी होती है वह इतना उलट-उलटकर देखने का कष्ट नहीं करता।

ज्योंही मैं स्टाल से हटने लगा, मेरे अपरिचित साथी ने आगे बढ़कर दुकानदार से पूछ लिया—"आखिर इस पुस्तक की क्या कीमत है ?"

"सात रुपये"—दुकानदार ने बड़ी रुखाई से कहा।

"छोड़ो, छोड़ो"—मैंने झेंपते हुए कहा।

"छोड़ूं कैसे ?"—मेरा अपरिचित साथी कह उठा।

मैंने देखा कि वह जेब से रुपये निकाल रहा है। एक-एक करके उसने पूरे सात रुपए दुकानदार की हथेली पर रख दिये। बोला—"यह पुस्तक मैं ख़रीद रहा हूँ।"

दुकानदार ने मेरी ओर देखा, जैसा पूछ हा रहो कि क्या वह यह पुस्तक इस ग्राहक को दे सकता है ? शायद उसके पास इस पुस्तक की बस एक ही प्रति रह गई थी। मैंने कहा—"अच्छा, यह पुस्तक इन्हें दे दो, मैं फिर देख लूँगा।"

पुस्तक लेकर मेरा अपरिचित साथी मेरी ओर लपका। बोला—"यह लीजिए अपनी पुस्तक !"

"मेरी पुस्तक कैसे ?"

"जिस तरह भी समझ सकें।"

"इस तरह तो मैं इसे नहीं ले सकता।"

"आखिर यह संकोच किसलिए ?"

मैंने पुस्तक ले ली और अपने इस अपरिचित साथी का आभार मानते हुए वरांडे में चलने लगा। मैले वस्त्रों के भीतर इतनी उजली आत्मा छुपी हुई है, यह मुझे अभी मालूम हुआ। मेरे साथी, मैं कहना चाहता था, तुम जरूर कोई अच्छे लेखक होगे। बरांडे से गुज़रना आसान न था, क्योंकि हर कहीं दुकानदारों ने स्टाल लगा रखे थे। भीड़ भी कुछ कम न थी। कुछ

लोग तो साइकिल लेकर बरामदों में से गुजर रहे थे। युवक और युवतियां, नये ब्याहे जोड़े, माता-पिता और बच्चे—सब तरह के लोग गुजर रहे थे। मैं अपने अपरिचित साथी से पूछना चाहता था कि उसकी रचना का विषय क्या है ? न-जाने मुझे क्यों यह ख़याल आ गया कि मेरे अपरिचित साथी ने जरूर अपने गाँव के सम्बन्ध में कुछ लिखा होगा।

"यहां आये आपको कितने दिन हो गये ?"—मैंने हँसते-हँसते पूछ लिया।

"दिन?" वह चकित होकर बोला—"दिन, सप्ताह, महीने, वर्ष। समय का रथ तो रुकता नहीं, यह तो आगे ही आगे चलता जाता है।"

"फिर भी बताओ तो।"

"बस, यही सवा वर्ष।"

"रहते कहां हो ?"

"एक मित्र के साथ।"

"कहां काम करते हो ?"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वह कुछ घबराया। मैंने सचमुच बड़ी भूल की जो यह प्रश्न पूछ लिया। प्रश्न वापस लेते हुए मैंने कहा—"खैर, रहने दीजिए। कहीं भी कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है।"

वह बोला—"जी हां, यह ठीक है। पर जब काम न मिले, या कम से कम वह काम न मिले, जिसमें काम करनेवाले का मन लग सकता हो तो बहुत दुःख होता है।"

"यह तो ठीक है।"

उसने खुद ही बता दिया कि यहां आकर उसका स्वप्न पूरा नहीं हुआ। इस एक वर्ष में वह बिल्कुल बेकार तो नहीं रहा। हाँ, उसके लिए यह कहना कठिन था कि वह सन्तुष्ट है। पिछले एक मास से वह एक सार्वजनिक संस्था के पुस्तकालय में

पुस्तकाध्यक्ष का काम कर रहा है। आज ही उसे इस मास का वेतन मिला था, जिसमें से सात रुपए उसने मेरे लिए पुस्तक खरीदने पर खर्च कर डाले थे। उसने यह भी बताया कि उसे मुझसे मिलने की बड़ी अभिलाषा थी। इस पर मैं तो खिलखिला कर हँस दिया—"अरे भई, मुझमें ऐसी कौन-सी बात है। चेहरे पर दाढ़ी क्या है एक साइन-बोर्ड लगा रखा है। मैं तो झुंझला उठता हूँ कि राह चलते लोग मुझे क्यों पहचान लेते हैं। सदा यह भय लगा रहता है कि कोई मुझे देख रहा है। भला यह भी कोई बात हुई कि किसी को गिन-गिनकर कदम उठाने पड़ें, इस ख़याल से कि कोई उसे देख रहा है।"

पर मेरे अपरिचित साथी ने मेरी इस कठिनाई की ओर तनिक भी ध्यान न दिया। वह बराबर मेरी प्रशंसा करता रहा। सच पूछो तो यह प्रशंसा मुझे उस समय बहुत नागवार गुज़री। कोई और समय होता तो मैं इसे हर्गिज बर्दाश्त न करता और साफ-साफ कह देता कि किसी तरह की चापलूसी मुझे पसन्द नहीं। पर मैं तो उसके अहसान के नीचे दब गया था। जो पुस्तक उसने मेरे लिए खरीदी थी, इस समय मेरे हाथ में थी। मैंने सोचा, मेरा यह अपरिचित साथी पुस्तकाध्यक्ष बनने का पूरा-पूरा अधिकारी है। आख़िर उसे पुस्तकों से प्रेम है।

कनाट प्लेस बहुत पीछे रह गया था। मेरा अपरिचित साथी बराबर मेरे साथ-साथ चला आ रहा था। मैंने सोचा, यह भी अच्छा है। घर पहुँचकर सात रुपए उसके हाथ में रख दूँगा। पता चला कि उसकी पत्नी इसी सप्ताह गाँव से यहां आ गई है।

वह बोला—"भला हो मेरे बहनोई का जो इस बार मेरी पत्नी को अपने साथ लिवा लाया। मेरा बहनोई मुझे बहुत

चाहता है। वह मेरा मित्र है। मैं उसीके क्वार्टर में रहता हूँ।"

मैंने कहा—"ऐसे सम्बन्धी बहुत कम हैं, जो किसी सम्बन्धी के लिए कोई भलाई का काम करें।"

वह बोला—"मेरी पत्नी पहली बार इतने बड़े शहर में आई है। वह तो बस एक गाँव में पैदा हुई, दूसरे गाँव में ब्याही गई। माथे की टिकुली को ही वह सबसे सुन्दर भूषण समझती है। पर यहां शहर में वह भी बदल जायगी।"

"उसे बदलने से तो तुम पूरी कोशिश से भी नहीं रोक सकोगे।"

"यह ठीक है। मैं उसे मजबूर नहीं करूंगा कि वह वैसी की वैसी ही बनी रहे, जैसी कि गाँव में थी।"

"टिकुली की सुन्दरता किसी कवि से पूछिए। शहरवाले क्या जानें? गाँव की कुलवधू के माथे पर यही टिकुली सौ-सौ गीतों में चमक उठती है।"

"यह तो ठीक है।"

"हां तो, टिकुली का कोई गीत तो तुम्हें भी याद होगा।"

मैंने देखा बात आगे नहीं बढ़ सकती। मैंने बात का रुख बदलते हुए कहा—"यूरोप के चित्रकार द्वारा प्रस्तुत की गई ग्राम्य युवती का चित्र इतना सुन्दर है कि उसी एक चित्र की कीमत सात रुपए से कहीं अधिक समझी जानी चाहिए।"

उसने सिर हिलाकर मेरी बात की दाद दी। फिर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला—"वह लहराते सुनहरे रेशमी केशोंवाली लड़की किस तरह हमें घूम-घूमकर देख रही थी!"

मुझे स्वीकार करना पड़ा कि उस लड़की का चेहरा इस चित्र की युवती से कुछ-कुछ मिलता-जुलता है। मैंने पूछ लिया—"यदि इस चित्र की युवती को टिकुली पहना दी गई होती तो वह कैसी लगती?"

इस पर वह हँस दिया। बोला—"यह क्यों नहीं पूछते कि उस लहराते सुनहरे रेशमी केशोंवाली लड़की के माथे पर टिकुली सजती या नहीं ?"

इस पर मुझे भी हँसी आ गई। मैंने झेंपकर कहा—"उसे छोड़ो। हाँ तो चित्र की युवती से कहीं अधिक उसका चित्र बहुमूल्य है। असल जीवन में वह युवती अब तक दादी अम्मा बन चुकी होगी, पर चित्र में वह अभी तक अपने यौवन को सम्हाले हुए है।"

वह हँसकर कह उठा—"तो कल को आप यह भी कहेंगे कि टिकुली से कहीं अधिक बहुमूल्य टिकुली का गीत है, क्योंकि टिकुली खो भी सकती है, और गीत तो बरारर गूँजता रहता है।"

"हां, हां,"—मैंने शह दी—"इसमें तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता।"

रास्ते में न जाने और किस-किस विषय की चर्चा हुई। बातों ही बातों में मेरे अपरिचित साथी ने बता दिया कि गाँव से शहर आने में उसकी पत्नी की टिकुली बिक गई। सस्ताई का जमाना होता तो शायद इतने सोने के इतने रुपये न मिल सकते। खैर, यह भी अच्छा हुआ कि आजकल सोना बहुत महँगा है। उसने ठंडी साँस भरकर कहा—"अब देखें, उसके लिए फिर से कब टिकुली बनवा पाऊँगा !"

मैंने हँसकर कहा—"जब तक तुम टिकुली बनवा पाओगे, तब तक शायद यह गाँव की नारी बदल चुकी होगी। फिर वह भला टिकुली को क्यों पसन्द करने लगी ?"

बातों में बहुत जल्द रास्ता कट गया। सड़क से जरा हटकर मेरा रहने का स्थान था। मैंने अपने साथी से कहा—"यहां तक आने का कष्ट किया तो ज़रा मेरा स्थान भी देखते जाओ।"

घर पर पहुँचकर मैंने उसे सबसे अच्छी कुर्सी पर बिठाया। फिर मैंने आलमारी से सात रुपए निकाले और उसके हाथ पर रख दिये। उसने रुपए लेने से साफ इनकार कर दिया। अब मैं सोचने लगा कि किस प्रकार उसका अहसान उतारूं।

मैंने पूछ लिया—"सच-सच कहो, टिकुली का कोई गीत तो तुम्हें जरूर याद होगा।"

"यों ही सुनाऊं या गाकर?"—यह कहते उसकी आंखें चमक उठीं।

"गाकर ही सुनाओ"—मैंने उछलकर कहा।

वह गाने लगा—

ई मटकी माँ साँवाँ-कोदों
ई मटकी माँ मंडुआ
आपन-आपन टिकुलली सम्हार मेहररुआ
बजरिया में आइलबा चोर!

सच कहता हूँ, मैं पुलकित हो उठा। मैं सोचने लगा कि सांवां, कोदों और मँडूआ खानेवालों के यहां भी सौन्दर्य के पुष्प खिल उठते हैं। गाँव की नारियों के खिले हुए पुष्पों जैसे चेहरों पर टिकुली की बहार बस देखते ही बनती है। इस पर कवि की चेतावनी देखिए। वह प्रत्येक नारी से पुकार-पुकार कर कहता है कि सौंदर्य के हाट-बाजार में अर्थात् जीवन के मेले में कोई छैल-छबीला आ निकला है, जो बहुत बड़ा चितचोर है। नारियों को चाहिए कि वे अपनी-अपनी टिकुली सम्हाल कर रखें, क्योंकि कौन जाने यह चोर किस-किस की टिकुली पर छा जाय।

मैं उसे बताना चाहता था कि हमारे यहाँ भी एक छोटी-सी टिकुली है, जो मैंने बड़े चाव से बनवाई है। पर जिस दिन से वह इस घर में आई, एक डिबिया में बन्द पड़ी है, क्योंकि मैं लाख

यत्न करने पर भी अपनी पत्नी को यह टिकुली पहनने के लिए राज़ी नहीं कर सका।

बहुत जल्द वह कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया। बोला—"अब मुझे चलना चाहिए।"

मैंने कहा—"अपनी रचना आप ज़रूर भेजें। उसके लिए जो भी हो सका, वह मैं कर दूँगा।"

वह झेंपकर रह गया। उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। मैंने कहा—"ज़रा, रुको। मैं सड़क तक चलूँगा।"

झट मैं अन्दर से वह डिबिया निकाल लाया, जिसमें टिकुली रखी थी। मेरे अपरिचित साथी को तो कुछ मालूम ही नहीं हो सकता था कि इस डिबिया में क्या है। मैं उसके साथ सड़क तक गया। और उसके हाथ में वह डिबिया थमाते हुए मैंने कहा—"इसे घर जाकर खोलना। यह मेरी भेंट है। इसे अस्वीकार करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।"

उसने वह डिबिया लेकर जेब में रख ली और अपने कार्टर का नम्बर और पता बताकर चला गया। कुछ ही दिनों में मेरी पत्नी शिकायत करने लगी कि उसकी टिकुली खो गई! मैंने हँसकर कहा—"चलो, बला टली ; क्योंकि तुमने तो उसे अपने माथेपर न पहनने की क़सम खा रखी थी।"

पर वह बराबर अपनी टिकुली को ढूँढ़ती रही।

सच कहता हूँ, उस समय मेरी आँखों में वह लहराते सुनहरे रेशमी केशोंवाली लड़की घूम गई, जिसने कनाट प्लेस के बरामदे में मुझे घूरकर देखा था। फिर मैं झटककर इस लड़की से अपनीकल्पना को मुक्त करते हुए अपने अपरिचित मित्र की पत्नी के बारे में सोचने लगा। चलो, उस बेचारी की खोई हुई टिकुली उसे फिर से मिल गई। फिर अपनी पत्नी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए मैंने वह चित्र निकालकर यूरोप की युवती

के माथे की ओर संकेत करते हुए कहा—"कहो तो इसके माथे-पर टिकुली कैसी रहेगी ?"

उसने चिढ़कर मेरी ओर देखा और कहा—"मेरी टिकुली खो गई और तुम्हें मज़ाक सूझ रहा है !"

दोराहा

खाने के कमरे से गोल कमरे में आते ही मेहमानों के कहकहे और भी लम्बे हो गये। खुले पायचों का पाजामा और खुली बाहों का कुर्ता पहने राजरतनम् इस महफिल में विशेष स्थान रखता था। मेजबान का दायित्व निभाने के विचार से देसाई उसकी बगल में मौजूद था और उसकी सबसे बड़ी कोशिश यही थी कि बातों का सिलसिला टूटने न पाये।

मेजबान से लेकर हर छोटे-बड़े मेहमान ने खादी की सफेद धोती-कमीज और गांधी टोपी पहन रखी थी। राजरतनम् ने अपने नंगे सिर पर हाथ फेरते हुए अनुभव किया कि यदि वह भी ऐसी महफिलों में गांधी-टोपी पहनने का नियम बना ले तो अच्छा हो।

स्त्रियों ने एक से एक बढ़िया साड़ी पहन रखी थी और जहां तक केश-विन्यास का सम्बन्ध था देसाई की बड़ी लड़की कल्याणी सब पर बाजी ले गई थी। उसका जूड़ा कुछ तिकोना-सा और ढलका-ढलका-सा नजर आ रहा था। वह अपनी छोटी

वह न रेणु की ओर मुंह किये बैठी जाने उसे क्या समझा रही थी।

राजरतनम् गोल कमरे की नीली दीवारों पर नजर घुमाकर लाल गलीचे को घूरने लगा। नीले और लाल रंग की विषमता उसे बहुत खटकी। फिर उसने गहरे लाल गुलाब की ओर देखा जो कल्याणी के काले चमकीले जूड़े पर लगा हुआ था और जिसकी प्रशंसा करने का यहां कोई अवसर न मिल सकता था।

दीवारों के नीले रंग और लाल गलीचे की कला पर विचार करते हुए राजरतनम् को कल्याणी और रेणु की विषमता भी खटकने लगी। कल्याणी कैसी प्रतिभाशाली लड़की है पर रेणु बैठी शाल बुनती रहती है—पीली शाल।

जब से वह यहाँ आया था कल्याणी उससे घण्टों बातें किया करती और वह यह अनुभव करता कि कल्याणी को देसाई से मस्तिष्क और श्रीमती देसाई से सौन्दर्य पारिवारिक थाती के रूप में प्राप्त हुआ है। कल्याणी ने उसे बताया था कि वह प्रतिवर्ष अपनी वर्षगांठ मनाती है और उस दिन सखियों के साथ अपना फोटो खिंचवाती है। इस गोल कमरे की दीवारों का नीला रंग उसे नापसन्द था। पर मां का मन रखने के लिए वह कभी विरोध नहीं करती। उसका बस चलता तो नया गलीचा मँगवाती—गहरा लाल गलीचा जिस पर फजूल-से फूल नजर न आते। अब तो उसकी रुचि उसके पहरावे और केश-विन्यास ही में नजर आ सकती थी। अपना एक बड़े साइज का फोटो उसने राजरतनम् को भी दिया था और मुस्कराते हुए कहा था—"इसे जावा की यात्रा में साथ रखिए।"

सभी मेहमान राजरतनम् की ओर तीखी चितवनों से देखते और फिर आपस में उलझ जाते। देसाई घबरा रहा था,

कहीं राजरतनम् यह न समझे कि ये लोग उसकी उपेक्षा कर रहे हैं।

सब का ध्यान अपनी ओर खींचते हुए देसाई कह उठा— "वे रहे पटेल, कवि, सेठ और दानी। ही ही ही! कविताओं से अधिक इनके दान ही प्रसिद्ध हैं। आप बंगाल-सेवा-मण्डल के प्रधान हैं। वे रहे रावल, कार्पोरेशन के मेयर जो कविता को व्यर्थ का प्रलाप समझते हैं। उधर कोने में ऐनकवाले पारीखभाई, जो मीरा के भक्त हैं और कहते हैं कि मीरा ने हिन्दी-साहित्य की नहीं, गुजराती-साहित्य की सेवा की है और हिन्दीवालों की यह जबरदस्ती है कि वे उसे अपनी कवियित्री मनवाने की ऊटपटांग कोशिश किया करते हैं। वे, जो इस समय अपनी गांधी-टोपी हाथों में उछाल रहे हैं अहमदा-बाद टाकीज के प्रोप्राइटर जोशी हैं। उनका दावा है कि उर्दू-हिन्दी और गुजराती अपने-अपने स्थान पर सुन्दर भाषाएँ हैं, पर हिन्दुस्तान की आम भाषा हिन्दुस्तानी ही हो सकती है और उसका वास्तविक रूप न कांग्रेस प्रस्तुत कर सकती है न ऑल इण्डिया रेडियो। इसकी सफलता का सेहरा अहमदाबाद टाकीज के सिर पर ही बँधना चाहिये।

राजरतनम् मुस्कराये जा रहा था और आँखें फैला-फैलाकर यह कहने का यत्न कर रहा था कि उसके सम्मान में बड़े-बड़े मेहमान पधारे हैं, वह उनका कृतज्ञ है। पर वस्तुतः वह वहाँ से उठ जाना चाहता था, क्योंकि ये लोग तो अपनी ही बातों में मस्त थे।

अभी तक राजरतनम् के मन में गरम-गरम खानों की खुशबुएं तैर रही थीं और खाने के कमरे का दृश्य उसकी कल्पना में बराबर उभर रहा था। दो तरफ दीवार के साथ रखी हुई सागवान की चौकियाँ कितनी सुन्दर प्रतीत होती थीं। जब

सब लोग बैठ गये, अर्थात् एक ओर पुरुष एक ओर स्त्रियाँ। उनके सामने ऐसी ही एक-एक चौकी और रख दी गई। उन पर थाल आने लगे, जिन में खाना पहले ही परोसा जा चुका था। चांदी के थाल और कटोरियाँ, चमचे और गिलास भी चाँदी के। मालूम होता था कि कोई रियासती दावत है। कल्याणी ने न जाने क्या सोचकर कह दिया था "बंगाल अभी तक भूखा है।" श्रीमती देसाई उसे टोकते हुए कह उठी थीं—"बस बस, कल्याणी, तुम्हारा बंगाल तो हमेशा भूखा रहेगा।"

गोल कमरे का वातावरण वार्तालाप से बोझिल हो रहा। श्रीमती देसाई ने जोशी से पूछा—"कहिये, अहमदाबाद टाकीज का नया फिल्म कब तक आ रहा है?"

जोशी कह उठा—"अब आया ही समझिये, मिसेज़ देसाई।"

कल्याणी बोली—"कहानी किसकी है?"

देसाई ने शाह दी—"यह पूछो कि गाने किसके हैं और उनकी धुनें किसने बाँधी हैं, क्योंकि हमारे फिल्म तो गानों के बल-बूते पर ही कामयाब होते हैं।

उधर से पारीख भाई कह उठे—"मुझे तो हैरानी होती है कि मीरा के गीतों की उपस्थिति में घटिया बाज़ारी किस्म के गाने क्यों लिखवाये जाते हैं?"

जोशी ने नाक-भौं सिकोड़ी और सफाई पेश की—"मीरा के गीत हर अवसर पर थोड़े ही गाये जा सकते हैं। मेरे यहाँ हर गीत पर हजार-हजार रुपये दिये जाते हैं।

कल्याणी चमककर बोली—"आप कहना चाहते हैं कि मीरा को किसी ने फूटी कौड़ी न दी थी।"

श्रीमती देसाई ने देखा कि कटुता उत्पन्न होने की सम्भावना है। "छोड़िये छोड़िये"—वह कह उठी—"जोशी का फिल्म आ

रहा है। हम खुद देख लेंगे।"

देसाई ने हँसकर कहा—"जोशी का फिल्म! यह भी खूब रही। फिल्म न कहानी-लेखक का होता है, न डायलॉग और गीत लिखनेवाले का, न संगीतकार को याद किया जाता है न डायरेक्टर को ही। अरे वाह रे फिल्म प्रोड्यूसर, फिल्म हमेशा तुम्हारा होता है।"

इस पर सब तरफ से कहकहों की बौछार होने लगी। यहाँ तक कि जोशी भी उछल-उछलकर हँसने लगा। राजरतनम् के चेहरे पर भी हल्की-सी मुस्कान लोचदार हँसी में बदल गई।

सहसा देसाई ने कहा—"यह तो आप जानते हैं कि राजरतनम् ने भारतीय संस्कृति के व्याख्याता के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। अब वे जावा के टैगोर मेमोरियल के निमन्त्रण पर वहाँ जा रहे हैं।"

कल्याणी ने शरारत से कहा—"मज़ा तो जब था कि राजरतनम् उस समय जावा जाते जब वहां जापानियों का अधिकार था। आज तो हर कोई जावा जा सकता है।"

श्रीमती देसाई कह रही थी—"आज आपने विशेष रूप से मेरे अनुरोध पर अपना प्रस्थान स्थगित किया। अब वे कल के जहाज से जा रहे हैं।"

जोशी ने थैली भेंट करते हुए कहा—"यह भेंट अहमदाबाद टाकीज़ की ओर से स्वीकार कीजिये।"

फिर देसाई ने सब की ओर से थैली भेंट की और श्रीमती देसाई ने उठकर कहा—"हम अपने मेहमान की बहुत खातिर न कर सके। पर मैं चाहती हूँ कि जब कभी वे बम्बई आयें हमारे यहां ठहरें।"

कल्याणी बोली—"राजरतनम् ये थैलियां बंगाल को देते जायँ। भूखे बंगाल को अभी सहायता की बहुत आवश्यकता

है। तैंतालीस के अकाल का प्रभाव अभी शेष है।"

राजरतनम् ने झट खड़े होकर कहा—"आपने यह रुपया मुझे दिया—धन्यवाद! मैं यह रुपया बंगाल को देता हूँ।"

पटेल ने उठकर कहा—"बंगाल-सेवा-मण्डल के प्रधान की हैसियत से मैं राजरतनम् का धन्यवाद करता हूँ। पर ये थैलियां वे रखें। इतना ही रुपया मैं उनकी ओर से बंगाल को भेज दूंगा।"

कल्याणी ने शरारत से कहा—"और इसमें भी क्या हर्ज है कि दोनों ओर से भूखे बंगाल को सहायता मिल जाय।"

कहकहे गूंज उठे। कल्याणी का सुझाव स्वीकार कर लिया गया। फिर देसाई ने बात पलटते हुए कहा—"बन्दरगाह के क्षितिज पर कल मुझे कुछ अस्पष्ट से चित्र उभरते अनुभव हुए।"

"कैसे चित्र ?"—श्रीमती देसाई ने पूछ लिया।

देसाई ने सम्भल कर कहा—"नृत्य के चित्र।"

श्रीमती देसाई ने व्यंग से कहा—"और नृत्य भी गरबा से मिलता-जुलता—जब तो तुम्हारा जी चाहता होगा कि तुम भी नृत्य में सम्मिलित हो जाओ।"

चारों ओर से कहकहे गूंज उठे और श्रीमती देसाई ने तो यहां तक कह दिया कि यदि सब लोग स्वीकार करें तो सोफे खिसका कर इसी जगह गरबा आरम्भ कर दिया जाय। पर उसका सुझाव कहकहों के नीचे दब गया।

देसाई ने राजरतनम् की पुस्तक 'नटराज' का परिचय देते हुए कहा—"राजरतनम् ने 'नटराज' की भूमिका में इस बात को खूब स्पष्ट किया है कि हमारे यहां नृत्य प्रायः पूजा का प्रतीक रहा है। हमारा गरबा भी तो पूजा-नृत्य है। वह घड़ा, जिसके चारों ओर सूराख कर लेते हैं और भीतर दीया जला दिया जाता

है—शास्त्रों में इस का उल्लेख गर्भ-दीप के रूप में किया गया है। इसे बीच में रखकर इसके चारों ओर नाचते हैं। कभी-कभी इसे सिर पर उठाकर एक स्त्री नाचती है। शहरों में तो गरबा मनोरंजन-नृत्य बन गया है। यह ठीक है कि ग्रामों में भी सर्वत्र वह गर्भ-दीप नज़र नहीं आता जो देवी का प्रतीक होता है और जिसके गिर्दनाचकर देवी को रिझाना ध्येय होता है। पर यहां शहरों में तो हम यह भी भूल चुके हैं कि इसी गर्भ-दीप से बिगड़ते-बिगड़ते 'गर्भा' और फिर 'गरबा' रह गया। 'नटराज' में गरबा की सबसे अधिक प्रशंसा की गई है।"

श्रीमती देसाई कह उठीं—"मैं कल ही 'नटराज' की एक प्रति खरीद लाऊंगी।"

कल्याणी ने व्यंग से कहा—"राजरतनम् का व्यक्तित्व उसकी रचना 'नटराज' से बहुत ऊँचा है और इस समय वे हमारे बीच उपस्थित हैं।"

श्रीमती देसाई ने कल्याणी की ओर तीखी चितवन से देखा, जैसे कह रही हो—शिक्षा का अर्थ गुस्ताखी है तो कालेज जाना छोड़ दो। भरी मजलिस में तुम मेरे अपमान पर उतर आई हो।

रेणु के हाथों में बराबर सलाइयां घूमती रहीं। वह पीले रंग की शाल बुन रही थी। कभी-कभी वह अपनी सुनहरी साड़ी की ओर देखने लगतीं, जैसे कहना चाहती हो—पीला रंग और सुनहरा रंग दोनों भाई-भाई हैं। कल्याणी की काली साड़ी की किनारी भी पीली है। पीला रंग भला किसे नापसन्द होगा।

देसाई ने राजरतनम् से प्रार्थना की कि वह कोई सुन्दर-सा सन्देश इस मजलिस को जरूर देता जाय। सब ने अनुरोध किया और राजरतनम् ने कहना आरम्भ किया—

"प्राचीन भारतीय नृत्य एशियाई नृत्य में विशेष महत्त्व रखता है। जावा, सुमात्रा और बाली के नृत्य पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति ने दूर-दूर तक विजय प्राप्त की थी। मैं जावा जा रहा हूँ, जहां हमारे पुरखाओं की थाती मौजूद है। आज भी भारत संसार को बहुत-कुछ सिखा सकता है। आध्यात्मिकता के द्वारा हम स्वतन्त्र जातियों की पंक्ति में विशेष महत्व प्राप्त करेंगे।"

सब के सिर गर्व से ऊंचे उठ गये। श्रीमती देसाई ने आंखें झपकाते हुए कहा—"भारतीय नृत्य जीवित है और जीवित रहेगा—यह उदयशंकर का सन्देश है जो उन्होंने पिछले महीने इसी गोल कमरे में हमें दिया था। आज राजरतनम् का सन्देश भी मिल गया। आध्यात्मिकता पर हमें गर्व है। इसीकी शक्ति-द्वारा हम स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।"

कल्याणी ने मां को घूरा, जैसे कहना चाहती हो—बड़ी आई है स्वतन्त्रता की मतवाली। कहो इस घर में कहां तक स्वतन्त्रता दी जाती है? अपना हुक्म चलाती हो। तुमने तो पिताजी को भी गुलाम बना रखा है।

नीली दीवारों की ओर देखते हुए राजरतनम् को ध्यान आया कि नीलवर्ण तो गोपियों के कृष्ण-कन्हैया का रंग है। इन गोष्ठियों में प्रेम मचलता है। यहां गरबा नाचा जाता है। फिर उसका ध्यान रेणु के पीले शाल की ओर घूम गया जिसे वह बड़ी लगन से बुन रही थी। पीला रंग भगवान् का रंग है, जैसा कि 'नटराज' की भूमिका में स्पष्ट किया गया है। फिर उसकी नज़र रेणु की सुनहरी साड़ी पर टिक गई। शास्त्र कहते हैं कि सुनहरा रंग वीरता का रंग है। रेणु ने तो व्यर्थ ही यह साड़ी पहन रखी है। कल्याणी वीरांगना है। सुनहरी साड़ी तो उसे ही पहननी चाहिये।

कल्याणी और उसके सखियां दीवान पर यों बैठी थीं जैसे उन्हें वह नृत्य पसन्द हो जिसमें गोपियां फूल चुनती हैं और जंगल में मधु-मक्खियों से बचती-बचाती नदी किनारे बैठकर मुंह धोने लगती हैं, पीछे से पगध्वनि सुनकर घबराहट और अस्त-व्यस्त-सी अवस्था में कन्हैया को देखती हैं।

सहसा पारीखभाई ने कहा—"यह पूर्व है और पूर्वी संस्कृति का तकाज़ा है कि पराई स्त्री की ओर कोई आँख उठा-कर न देखे।"

स्त्रियों ने कहकहा लगाया, जैसे कह रही हो तब तो तुम हमारी ओर बिल्कुल नहीं देखते।

पारीखभाई ने फिर कहा—"हम नारियों को देवी समझ कर पूजते हैं।"

"और मीरा के गीत गाते हैं?"—जोशी ने चोट की—"और भक्ति-रस में डूब जाते हैं।"

देसाई बोला—"कदाचित् भक्ति-रस के कारण ही हम हिन्दुस्तानी इतने भावुक हैं कि कोई विदेशी लेखक हमारे विरुद्ध एक वाक्य तक लिख दे तो हम कहने लगते हैं कि हमें ज़लील किया जा रहा है। हालांकि हम बहुत-सी बातों में सचमुच ज़लील हैं।"

कल्याणी ने बड़े गर्व से अपना सिर उठाया, जैसे कह रही हो—कभी-कभी तो आप पते की बात कह जाते हैं, पर यह उसी समय होता है जब आप माताजी की गुलामी से कुछ क्षणों के लिए आज़ाद हो जाते हैं।

जोशी ने व्यंग से कहा—"पारीखभाई से कोई पूछे कि हम मीरा के गीत गाकर कैसे आज़ादी प्राप्त कर सकते हैं?"

राजरतनम् सिमटा-सिमटाया बैठा था। उसने सोचा अमीर लोग हर रंग और हर विषय पर बोल सकते हैं। ये कहां गुलाम हैं?

ये तो आज भी आजाद हैं।

जोशी कह रहा था—"हम एक ऐसी कहानी लिखवाना चाहते हैं जो हिन्दुस्तान को झंझोड़ कर रख दे।"

कल्याणी बोली—"मैंने भी एक ऐसी कहानी लिखी है। कहिए, आप इसे पसन्द करेंगे ? यों देखिये—एक लड़की खड़ी है। उसके पास से भूखों के काफिले गुजरते चले जाते हैं। वह लड़की इन लोगों की ओर देख रही है। उसके मन में चित्र उभरते और मिटते हैं। गाँव-के-गाँव उजड़ रहे हैं। पर जब गाँव से आनेवाले लोग उसके पास से गुजरते हैं, वह न उनकी ओर देखती है न यह सोचती है कि वे कहां जा रहे हैं...फिर एक दिन उसका मस्तिष्क करवट लेता है और वह देखती है कि शहर में उन पर क्या बीती है...और फिर जब मृत्यु के पंजे से किसी-न-किसी प्रकार बचकर आनेवाले लोग वापस आते हैं तो हैरान रह जाते हैं कि वह लड़की उसी स्थान पर जमी खड़ी है। सब यही सोचते हैं कि वह कोई साधारण लड़की नहीं है। वह उसे देवी समझ कर उसके पैरों में झुक जाते हैं। कोई कहता है, यह काली है। कोई कहता है, लक्ष्मी है। कोई कहता है, यह तो भारतमाता है और अपनी सन्तान के दुख-दर्द का इलाज सोच रही है......ये लोग चले जाते हैं, पर वह वहीं खड़ी रहती है और उसके मन में कुछ और चित्र उभरते हैं......देश में क्रान्ति आ रही है......यह लड़की भी एक कहकहा लगाती है और उधर ही को चल देती है जिधर शताब्दियों का गतिरोध टूट रहा है और नया जीवन सांस लिया चाहता है।"

जोशी की आंखें चमक उठी। बोला—"हम इसे ज़रूर फिल्मायेंगे।"

पारीखभाई ने कहा—"मीरा का कोई गीत इसमें ज़रूर

रखिये।"

जोशी ने जेब से चेकबुक निकाली और चेक लिखकर कल्याणी को देते हुए कहा—"यह भेंट अहमदाबाद टाकीज़ की ओर से स्वीकार कीजिये।"

कल्याणी ने चेक ले लिया और इस पर एक उचटती-सी नजर फेंककर खड़ी हो गई। बोली—"यह सात हजार का चेक मैं बंगाल को दे रही हूँ।"

पटेल ने चेक लेते हुए कहा—"मैं बंगाल की ओर से कल्याणी का धन्यवाद करता हूँ।"

रेणु की सलाइयां उसी तरह चल रही थीं, जैसे न उसके लिए वह लड़की सत्य थी, न भूखे-नंगे हजारों किसान और न यह सात हजार का चैक जो कल्याणी ने बंगाल को दे दिया थां।

राजरतनम् झुंझला उठा कि वह कहाँ आ फँसा। इस गोल कमरे के वातावरण में एक पराजित सभ्यता सिसकियां ले रही थी। व्यर्थ उसने प्रस्थान कल पर स्थगित किया। भला उसे इस महफिल में क्यों घसीटा गया?

महफिल फिर अलग-अलग टोलियों में बँटती चली गई, जैसे देखते-देखते एक विशाल भूखण्ड छोटे-छोटे द्वीपों में बँट जाय। जावा भी तो एक द्वीप है, राजरतनम् ने सोचा, किसी जमाने में यह भारत का अंग होगा, फिर सागर ने बढ़कर उसे भारत से पृथक् कर दिया।

राजरतनम् ने उठकर सबसे आज्ञा चाही। सब उसे प्रणाम कर रहे थे।

कल्याणी को अपना कर्त्तव्य याद था। राजरतनम् को उसके कमरे तक छोड़ आने के लिए वह उसके पीछे-पीछे चली जा रही थी। बोली—"गुजरात में कहते हैं—'जो जाय जावे तो पाछे नहीं

आवे, ने जो आवे' तो परिया-परिया मोती लावे अर्थात् जो जावा जाता है लौटकर नहीं आता और आता है तो इतने मोती लाता है कि पीढ़ियों तक खतम नहीं होते।"

राजरतनम् ने चलते-चलते कहा—"हमारे सौदागरों के अपने जहाज होते थे। जहाजरानी की ओर सर्वप्रथम भारत ने ही तो ध्यान दिया था।"

कल्याणी कह रही थी—"मोती रोलने का शौक हमें कहां-कहां ले जाता है।"

राजरतनम् ने कहा—"आज जावा को मेरी आवश्यकता है।"

कल्याणी कह उठी—"पर जावा से कहीं अधिक आज भारत को आपकी आवश्यकता है।"

वे कमरे के दरवाज़े पर पहुँच चुके थे। कल्याणी कुछ सुनने के लिए उत्सुक थी। पर राजरतनम् खामोश खड़ा था।

कल्याणी ने आज्ञा ली और दूर से बड़े दरवाज़े की तरफ़ देखते हुए, जहां मेहमान अपनी-अपनी कार में बैठ कर चले जा रहे थे, अपने कमरे की ओर घूम गई।

२

मुझ से तो रेणु ही अच्छी है, राजरतनम् ने सोचा, मैं क्यों अपने आदर्श से भटक जाता हूँ? रेणु बैठी पीली शाल बुनती रहती है। उसकी सलाइयां कभी नहीं थमतीं।

इन महफिलों में मुझे कभी-कबार ही सम्मिलित होना चाहिये, उसने फैसला किया, मेरा समय सबसे बड़ी सम्पत्ति है। आखिर इसे प्रतिपल लुटाते रहने से क्या लाभ?

चारों ओर सागर ही सागर, जैसे जहाज जावा की ओर जा रहा हो। पर उसका मन बंगाल की ओर घूम गया। पुलिस भूखे बंगालियों को कलकत्ते से दूर भगा रही थी। उसे कौन रोक

सकता था ? उसे कल्याणी भी न रोक सकती थी। अब यदि अहमदाबाद टाकीज का प्रोप्राइटर भूखे बंगाल का दृश्य अपने फिल्म में प्रस्तुत करेगा तो इसलिये नहीं कि उसे बंगाल से सहानुभूति है। उसका तो केवल एक ही उद्देश्य है। वह पैसे कमाना चाहता है । यह भी मालूम हो गया कि ये लोग कहानियां कैसे प्राप्त करते हैं।कल्याणी के स्थान पर यही कहानी कोई निर्धन असुन्दर कन्या प्रस्तुत करती तो कदाचित उसे सात रुपये भी न दिये जाते। कल्याणी महफिलों की तितली है और हर कोई जानता है कि वह देसाई की बेटी है। ये लोग भारत की प्राचीन महानता से अपरिचित हैं। कदाचित् वे समझते हैं कि फिल्म के आविष्कार का छाया-नाटक से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। जावा में छाया-नाटक आज भी जीवित हैं। यद्यपि भारत में यह कला बहुत हद तक मर चुकी है। पर जावा में यह कला भारत से ही तो गई थी...और घूम-फिर कर उसका मन श्रीमती देसाई को कोसने लगा। कम्बख्त ने खाने के कमरे में कैसे कल्याणी को टोक दिया था। हालांकि उसने यही तो कहना चाहा था कि बंगाल अभी तक भूखा है।

वह उठ कर खिड़की में खड़ा हो गया, जहां चांदनी प्रपात के समान भीतर आ रही थी। उसे यों अनुभव हुआ जैसे कल्याणी की आवाज़ कहीं से गूंज उठी है—मां को बुरा-भला मत कहो, राजरतनम् ! मां-बेटी का रिश्ता मैं खूब समझती हूँ...उसने झुंझला कर आंखें बन्द कर लीं और अपने मस्तिष्क में झांकने का यत्न करने लगा।

कसमसाहट की अवस्था में वह खड़ा रहा, जैसे रेणु की सलाइयां उसके मस्तिष्क में खटखटा रही हों। रेणु तो मूर्ख-सी लड़की है। कल्याणी से उसका मुकाबला ही क्या ? एक फिल्म-कहानी के सात हज़ार रुपये पीली शाल वाली रेणु को

मिल सकते तो वह ऊन खरीद लाती और उमर भर बैठी शाल बुनती रहती। कल्याणी की क्या बात है! उठ कर सात हजार का चेक बंगाल को दे दिया। श्रीमती देसाई का बस चलता तो उसे उलटी ही पट्टी पढ़ाती।

वह अपने पलंग पर आ बैठा और सोचने लगा—मैंने अपनी थैलियां व्यर्थ ही बंगाल को दे दीं। यह रुपया मुझे मिला था तो मुझे ही इसे खर्च करना चाहिये था।

वह समय दूर न था कि उस पर गतिरोध की अवस्था छा जाय। वह उठकर कमरे में टहलने लगा। उसने बड़े-बड़े दुःख देखे थे और जबसे उसे ख्याति प्राप्त हुई उसे अमीर मेजबानों से वास्ता पड़ा था। उनके लिए तो मामूली बात है कि मेहमान की थोड़ी खातिर कर दी। पर मेहमान के व्यक्तित्व पर यह ज़रा-सी खातिर भारी चट्टान के समान गिरती है। मैं भी कितना मूर्ख हूँ। इस रुपये से मैं जावा में एक सम्पन्न यात्री के समान घूम सकता था। बंगाल की भूख केवल मेरे रुपये से तो दूर होने से रही।

...पानी ही पानी, जैसे जहाज पानी चीर रहा हो...जावा पहुँच कर मुझे भारत का सन्देश देना है। जावा, जहाँ भारत के सौदागर मोती रोलने जाते थे। जावा, जहां आज भी भारतीय नृत्य जीवित हैं। मैं अपने भाषण में जावा-निवासियों से कहूंगा कि जीवन के बहुत से कार्यक्षेत्रों में भारत मृतप्राय हो चुका है। पर जावा तो जीवित है और जावा का जीवन किसी जमाने में भारत की देन था। आज भारत जावा के जीवन से जीवित हो सकता है।

उस समय कल्याणी के शब्द उसके मस्तिष्क में गूंज उठे। जावा से अधिक आज भारत को आपकी आवश्यकता है। उँह, यहां किसे मेरी आवश्यकता है? पटेल को, जिसकी कविताएं

मिथ्या प्रलाप हैं और जीवित भी हैं तो उसकी दौलत के बल-बूते पर......जन्मभूमि ! उँह ! पहले लोगों को खूब लूटो। फिर इस लूट में से थोड़ा-सा दान कर दो। उंह, यह कैसा दान है ?

वह फिर पलँग पर बैठ गया और एक अँगड़ाई लेकर बैठ गया। वह चाहता था कि बटन दबाकर बिजली बुझा दे। पर वह चित लेटा बल्ब की ओर देखने लगता। आईने में उसे अपने बाल नज़र आ रहे थे। उसे ध्यान आया कि इतने वर्ष यों ही गुजार दिये। बहुत-सी पुस्तकें पढ़ डालीं, थोड़ा-बहुत लिख डाला, भाषण किये और बस—यह भी आखिर क्या जीवन है ? पर फिर अपनी सफाई पेश करते हुए वह उन लोगों को कोसने लगा जिनसे आज दावत पर भेंट हुई थी। ये भी क्या करते हैं ? उसे अपने मेजबान पर भी क्रोध आ रहा था। फिर उसके मन में नमक का ढेला उभरने लगा, जैसे यह कह रहा हो—तुम तो नमकहराम हुए जाते हो। अपने मेजबान को कौन बुरा भला कहता है ? उसे यों लगा जैसे उसके मुख का स्वाद कसैला हो गया हो।

नींद अपना मोर्चा छोड़ कर जाने किधर भाग गई थी। वह धीरे-धीरे पलकों के किवाड़ बन्द करने लगा। जैसे कहीं से जोशी की आवाज़ कड़क उठी। वह अहमदाबाद टाकीज़ के कलाकारों और अभिनेताओं पर गरज रहा था। अगले ही पल जैसे अनगिनत रुपये खनन-खनन कर उठे हों। कलाकारों और अभिनेताओं की कमाई वह अपनी जेब में उड़ेल रहा था। उसने सोचा कि अब के जब वह कल्याणी की कहानी फिल्मायेगा तो इतने ही रुपये फिर उसकी जेब में आ जायँगे।

वह नींद की धारा में बह गया !......वह खेतों की ओर तेजी से चला जा रहा था, जिनका अगला सिरा किसी अनजान कुंवारी के उड़ते आंचल के समान क्षितिज को छू रहा था। एक

जगह पहुंच कर वह रुक गया, जहां धरती में अनगिनत सुराख नजर आ रहे थे ! इतनी तन्मयता से क्षितिज की ओर न जाने वह लड़की क्या देख रही थी। उसने उसे पुकारा, पर लड़की क ध्यान इधर आकर्षित न हुआ। परे से लोगों के काफिले आये और गुजर गये। लड़की उसी तरह खड़ी रही और वह भी तो लड़की के पास उसी के अन्दाज में खड़ा हो गया था।......

वह चौंक कर उठ बैठा। यह स्वप्न न था, कल्याणी की कहानी की संशोधित रूपरेखा थी। वह चाहता था कि इसी समय जाकर कल्याणी से कहे कि अकेली लड़की कहानी में गहराई पैदा नहीं कर सकती। एक युवक का रोल अत्यन्त आवश्यक है और यदि इस लड़की के रोल के लिये उसे ही चुना जा रहा हो तो वह स्वयं इस युवक के रोल के लिये अपना नाम दे सकता है......पर जावा कौन जायगा ? उंह, फिल्म कम्पनी की नौकरी मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। मुझे मेरा आदर्श बुला रहा है। मैं जावा जाने का इरादा कैसे छोड़ सकता हूँ ?

वह बिना सोचे आईने की ओर, देखता रहा। उसके मस्तिष्क में हजारों आवाजें गूंज उठीं जैसे सारा देश उसे धिक्कार रहा हो—वाह राजरतनम्, हम तो समझते थे कि तुम विदेशों में भारत का नाम उज्जवल करोगे। तुम तो अहमदाबाद टाकीज के अभिनेता बनकर रह गये।

उसके मस्तिष्क में लावा उबल रहा था। उसने फैसला किया कि वह किसी भी शर्त पर अपने को अभिनेता के स्तर पर नहीं उतरने देगा। उसे अपने शरीर में अजब थकन और निर्बलता अनुभव हो रही थी। जैसे वह एक सप्ताह से इसी पलंग पर बीमार पड़ा रहा हो। उसे यों लगा कि खून की गति उधर जा रही है और सांस की गति इधर। वह परेशान था और शान्ति के लिए तड़प रहा था।

आईने में अपना चेहरा देखकर उसे घृणा-सी आने लगी और वह उठकर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। रात की रानी के फूलों की तेज खुशबू का झोंका उसकी नाक को छू गया। चाँद की ओर देखने की तबीयत न हुई, न उसने तारों को घूरने की आवश्यकता अनुभव की। वह चाँदनी की गहरी-गहरी सिलवटों को देखता रहा। फिर उसे यों लगा कि पेट्रोल की बू रात की रानी की खुशबू में मिश्रित हो रही है। जरूर जोशी की कार से यह पेट्रोल गिरा होगा। उसकी कल्पना में प्रति-ध्वनि-सी उत्पन्न हुई। जोशी का चेहरा उसकी आँखों में फिर गया। लंगूर है लंगूर। कभी तो वह भी आईने में अपना रूप देखता होगा। मैं जावा को भारत का सन्देश सुनाने जा रहा हूँ। क्या उसमें इस लंगूर का सन्देश भी सम्मिलित है?

फिर वह पलंग पर आ बैठा। एक अँगड़ाई लेकर वह लेट गया और निद्राधारा में बह गया...एक स्त्री उसे पुकार रही थी—आओ देखो, मेरा बच्चा मर रहा है। तुम हमारे गाँव में आये थे तो तुमने इसी के सिर पर हाथ फेरकर कहा था—यह भी रविबाबू बनेगा। वह उसका कन्धा पकड़कर खड़ी हो गई और बोली—मेरा बच्चा मर गया। तुम्हारा आशीर्वाद किसी काम नहीं आया! यह उसकी लाश पड़ी है। पर तुम उसकी ओर देखना भी नहीं चाहते...फिर उसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर का चेहरा अन्धेरे में उभरता नजर आया। धीरे-धीरे यह समीप आता गया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर रो रहे थे—मेरे गीत नष्ट हो रहे हैं। उनके गानेवाले ही न रहे तो वे भी कैसे जीवित रह सकते हैं?...वह चौंककर उठ बैठा। आज मैं कैसे-कैसे सपने देख रहा हूँ?

अब जो उसकी आँख लगी तो वह सीधा जावा जा पहुँचा। जावा की नर्त्तकी नाच रही थी। यह तो कोई देवदासी प्रतीत

होती थी। नाच खतम होते ही उसके समीप आकर हँस पड़ी—परदेसी, तुम किधर से टपक पड़े ? देश में कोई काम न था कि यहां चले आये ?......एक जगह जावा के मंच पर किसी का भाषण हो रहा था। ज्योंही वक्ता नीचे उतरा, वह स्वयं मंच पर खड़ा होकर लोगों को सम्बोधित करने लगा। भीड़ का शोर बुलन्द हुआ—बड़ा आया है वक्ता ! यह हमें क्या बतायेगा ? हमारे अपने वक्ता जीवित रहें। कोई हिन्दुस्तानी मालूम होता है। हाँ बाबा, आजकल हिन्दुस्तानी वक्ता हम पर बुरी तरह डोरे डाल रहे हैं........और आंख खुलने पर उसने देखा कि वही कमरा है और वही पलँग। रात की रानी की खुशबू पर वह बुरी तरह झुँझला उठा और कल्याणी की आवाज़ फिर एक बार उस के कान में गूंज उठी—जावा से कहीं अधिक आज भारत को आपकी आवश्यकता है। बिजली का बटन दबाकर उसने कमरे में अंधेरा कर दिया। खिड़की के रास्ते चांदनी अन्दर आ रही थी। उसे यों लगा कि कमरे के कोने में एक उदास चेहरा नजर आ रहा है। जैसे यह शरत् का चेहरा हो। वातावरण में एक सिसकी-सी गूँज उठी। अब जैसे शरत् की आवाज़ साफ़ सुनाई देने लगी—व्यर्थ चले गये मेरे उपन्यास। लोग तो मर रहे हैं, मेरे उपन्यास कौन पढ़ेगा ?...वह घबराकर उठ बैठा। ध्यान से देखा तो कहीं कोई चेहरा नज़र न आया। न कोई आवाज़ सुनाई दी। उसने सोचा मैं पागल हो जाऊंगा। उसके अचेतन मन में भारत के दृश्य बुरी तरह उलझ रहे थे—लाखों देखे-अनदेखे दृश्य।

उसने बटन दबाकर प्रकाश किया और बक्स से 'शाश्वत जावा' निकालकर चित्र देखने लगा। उसे कुछ-कुछ शान्ति-सी अनुभव हुई। एक लड़की का चेहरा तो बहुत कुछ कल्याणी से मिलता था। लपककर वह बक्स में से कल्याणी का बड़े साइज़ का

फोटो निकाल लाया। वही लजीले कजरारे नयन। हां, जावा की लड़की जरा नटखट मालूम होती है। उसने जावा के बीसियों चित्र निकालकर देखे। पर उसका मन तो उस नटखट लड़की से चिपक गया था। उसने पुस्तक बन्द कर दी और कल्याणी का चित्र भी बक्स में रख आया। पागल न बनूँ और सो जाऊँ। बटन दबाकर उसने फिर अँधेरा कर दिया।

उसके मन में अनेक प्रकार के चित्र उभर रहे थे। दुल्हनें और कुंवारियां नदी से पानी भरकर गांव की ओर आ रही हैं। पगदण्डी पर टूटे हुए घड़ों के टुकड़े न जाने क्या-क्या कहानियां सुना रहे हैं। आज इन पनिहारिनों के चेहरे उदास क्यों हैं? नयनों से काजल क्यों ढलक गया? घड़ों का सन्तुलन भी ठीक नजर नहीं आता है......घड़े एकसाथ गिर पड़ते हैं और स्त्रियां कह रही हैं—तुमने हमें देखा। हमारे रूप की प्रशंसा की। हमारे घड़ों से पानी पीया। आज तुमने हमारी सहायता न की...

अचानक उसकी आंख लग गई......कल्याणी मजलिस में बैठे हुए लोगों को खरी-खरी सुना रही थी। तुममें से लखपति और करोड़पति चाहते तो ट्रक भर-भरकर बंगाल के अकाल-पीड़ितों को गुजरात में ला सकते थे। पर आपने तो दो-दो हजार का चन्दा भेजकर ही समझ लिया कि बस फर्ज पूरा हो गया। और किस देश में यह बात सहन की जा सकती है? फिर यह दावा कि भारत संसार को बहुत-कुछ सिखा सकता है! क्या सिखा सकता है? यही न कि हमने स्त्रियों को बिकने दिया, बच्चों और बूढ़ों को मरने दिया। संसार कहेगा कि तुमने खुद स्त्रियों को बेचा और अपने हाथों से बच्चों और बूढ़ों के गले घोंटे। कभी तो ये भिखमंगे भी खाते-पीते किसान थे। आओ उनके मुंह में रोटी के टुकड़े डाल दें......और वह इस मजलिस से उठकर

दूर निकल गया, जहां वातावरण में घूरती हुई आत्माएं रात के अन्धकार में भयानक पुतलियां और पिंजर दिखाकर डराने लगीं। वह दूर भाग जाना चाहता था; पर ये आत्माएं उसका पीछा करने लगीं—सुन ओ जानेवाले, हमें जीवित लोगों से घृणा है। तुम लोग भी उतने ही मुर्दे हो जितनी कि हम। दया, सहानुभूति और प्रेम के झरने सूख चुके हैं...और आत्माओं के काफिले उसके गिर्द मण्डरा रहे थे—बूढ़े, जवान, बच्चे। उनकी भयानक चीखें उसे परेशान कर रहीं थीं......

वह चौंककर उठ बैठा। उसने हँसने का यत्न किया और, सोचा कि मानवता का अन्त हो गया। वे भी मर गये और हम जो जीवित हैं—हम भी कहाँ जीवित हैं? कितने रवीन्द्रनाथ ठाकुर, कितने शरत् धूल में समा गये। फिर उसने अपने हृदय और मस्तिष्क को धोखा देते हुए यही फैसला किया कि वह जावा अवश्य जायगा।

नींद आये न आये, उसने सोचा अब मैं उठकर नहीं बैठूंगा। एक बार फिर आँख लग जाय तो सिर ज़रा हल्का हो जाय। और जब उसकी आँख लगी तो कुछ इस प्रकार जैसे कोई गहरे पानी में डुबकी लगाये और बाहर के शोर से उसका सम्बन्ध न रहे......वह लड़की खड़ी थी—वही क्षितिज की ओर देखती हुई लड़की। कब तक यह इस तरह खड़ी रहेगी? उसे सन्देह होने लगा कि यह रक्त-मांस की लड़की नहीं बल्कि किसी कलाकार की तराशी हुई मूर्ति है जिसे उसने यहाँ कुछ इस प्रकार से स्थापित कर दिया है कि देखनेवाले को मूलवस्तु का धोखा होने लगे। वह समीप जाकर उसका स्पर्श करना चाहता था। फिर उसे ध्यान आया कि शायद इसमें कोई ऐसी विद्युत्-धारा दौड़ रही हो जो मुझे हमेशा के लिये झुलस दे। वह दूर से उसे

देखता रहा। यह अवश्य कोई मूर्ति है, जीवित लड़की कैसे हो सकती है ? अब तक वह थक चुकी होती। फिर उसने देखा, सब आत्माएं जो उसे तंग करती रही थीं अब इस लड़की के गिर्द नाच रही हैं—बच्चे, बूढ़े, जवान सब नाच रहे थे। लड़की उसी तरह खड़ी थी—क्षितिज की ओर देखती हुई। प्रेतात्माएं उसे बुला रही थीं। वह कहीं छिप जाना चाहता था। पर उसमें भागने की शक्ति न थी। यह लुटी हुई सभ्यता का नृत्य है, उसने सोचा, और यह उस समय तक जारी रहेगा जब तक कोई नई सभ्यता जन्म नहीं लेती। लड़की क्षितिज की ओर देख रही थी जैसे नई सभ्यता की प्रतीक्षा कर रही हो......सहसा ये प्रेतात्माएँ आँखों से ओझल हो गईं और अगले ही पल उसने आश्चर्य से देखा कि कल्याणी वहाँ आ निकली। जैसे वह उसे पहचानती ही न हो। वह उस लड़की के गिर्द नाचने लगी। हू-ब-हू वही साड़ी और वही काला-चमकीला तिकोना-सा ढलका-ढलका जूड़ा जिस पर गहरा अधखिला गुलाब सुसज्जित था...कदाचित् यह इस नृत्य ही का कोई जादू था कि वह लड़की लुप्त हो गई। अब उस लड़की के अन्दाज में स्वयं कल्याणी खड़ी हो गई थी। और वह कल्याणी के समीप जाते झिझकता था......

३

राजरतनम् हड़बड़ा कर उठ बैठा। दरवाजे पर दस्तक दी जा रही थी। उठकर उस ने दरवाजा खोला। कल्याणी और रेणु तैयार होकर आ गई थीं।

राजरतनम् झेंपकर रह गया। बोला—"आप भी समझती होंगी कि मैं कितना सुस्त हूँ।"

"हाँ, हाँ!"—कल्याणी ने रेणु के समीप बैठते हुए कहा—

"आप शायद आज भी जावा नहीं जा रहे हैं।"

"यह कैसे हो सकता है ?" राजरतनम् ने चमककर कहा—"सामान तो कल का बँधा पड़ा है और मैं भी तैयार हूँ।"

रेणु के हाथों में उसी तरह सलाइयाँ घूम रही थीं, जैसे वह रातभर यह पीली शाल बुनती रही हो। राजरतनम् ने उसे खुबती हुई नज़रों से देखते हुए सोचा—मैं भी तो रातभर सपने बुनता रहा हूँ—सपनों की पीली शाल !

कल्याणी ने रेणु से सलाइयाँ छीनते हुए कहा—"देखो रेणु, तुम्हारी यह आदत मुझे नापसन्द है। क्यों यह पीली शाल किसी प्रदर्शिनी में भेजोगी ?"

रेणु मुँह से कुछ न बोली; पर कल्याणी से सलाइयाँ वापस लेकर फिर शाल बुनने लगी। राजरतनम् को दोनों बहनों की विषमता बहुत खटकी, पर वह ऐसे किसी विषय पर विवाद करने को तैयार न था।

कल्याणी कह रही थी—"तो आप जावा ज़रूर जा रहे हैं ?"

राजरतनम् बोला—"हाँ हाँ, कल्याणी ! में कैसे रुक सकता हूँ ?"

रेणु की सलाइयां और भी तेज़ हो गईं, जैसे साफ़-साफ़ कह रही हो—मुझे न राजरतनम् के जावा जाने में दिलचस्पी है न कल्याणी के जावा न जाने में।

कल्याणी कह रही थी—"तो 'शाश्वत जावा' मुझे देते जाइये।"

रेणु ने सिर ऊपर न उठाया। उसके माथे पर बल पड़ गये, जैसे कह रही हो—तुम्हारी यह भीख मांगने की आदत मुझे बिल्कुल नापसन्द है, कल्याणी ! कहो, तुममें और उन बंगाली भिखारियों में क्या अन्तर है ?

राजरतनम् उठकर 'शाश्वत जावा' निकाल लाया और उसे कल्याणी के हाथों में देते हुए बोला—"लीजिये, इसे शौक से पढ़िये।"

कल्याणी कह उठी—"मैं इसे खतम करके ही दम लूँगी।"

रेणु ने सलाइयाँ तेज़ कर दीं, जैसे कह रही हो—तो तुम भी इसे पढ़ने के बाद जावा जाने की तैयारी करोगी और यह पुस्तक मुझे देती जाओगी। मैं इसे लेने से साफ इनकार कर दूंगी।

राजरतनम् कह रहा था—"मैंने अभी तक जावा नहीं देखा।"

कल्याणी बोली—"और मैंने बंगाल कब देखा है?"

रेणु की सलाइयाँ और भी तेज़ हो गईं, जैसे कह रही हो—तुम दोनों तो पागल हो, मुझे तुम दोनों की बातों से कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती।

कल्याणी कह रही थी—"बंगाल भूखा है! तैंतालीस के अकाल का प्रभाव न जाने कब तक बाकी रहेगा।"

राजरतनम् ने कुछ जवाब न दिया। कल्याणी ने फिर कहा—"जावा तो आप जा रहे हैं, पर बंगाल आप का पीछा करेगा।"

राजरतनम् जाने क्या सोचकर बोला—"वह तुम्हारी फिल्म-कहानी बड़ी विचित्र वस्तु है, कल्याणी!"

कल्याणी ने लजाते हुए कहा—"वह तो योंही एक छोटा-सा विचार है। अब देखना तो यह है कि अहमदाबाद टाकीज़-वाले इसे कैसे प्रस्तुत करते हैं?"

रेणु की सलाइयाँ सुस्त पड़ गईं, जैसे वह पूछना चाहती हो—बंगाल के भिखारियों का दृश्य बंगाल में जाकर तैयार कियाँ जायगा या योंही यहां के लोगों को भिखारियों के कपड़े पहनाकर काम चला लिया जायगा? फिर जैसे स्वयं उसे अपनी

बात निरर्थक-सी प्रतीत हुई हो और फिर उसी गति से सलाइयाँ घूमने लगीं।

राजरतनम् कह रहा था—"क्रान्ति का यह अर्थ बिलकुल नहीं, कि आत्मा का ध्यान ही न रखा जाय। प्रत्येक निर्माण वस्तुतः एक पुनरुत्थान ही तो होता है। तुम्हारी कहानी का क्लाइमैक्स उभारते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि तुम कहां तक कला की सहायता कर सकती हो।"

श्रीमती देसाई और देसाई भी तैयार होकर आ गये। बोले—"जहाज का समय समीप है।"

कार तैयार थी। श्रीमती देसाई, रेणु और कल्याणी पिछली सीटों पर जा बैठीं और राजरतनम् को सामने की सीट पर बैठाकर देसाई ने कार बाहर निकाली और बन्दरगाह की ओर चल पड़ा।

राजरतनम् खामोश था। श्रीमती देसाई ने कल्याणी के हाथ से 'शाश्वत जावा' लेते हुए डस्ट-कवर पर जावा की युवती को ध्यान से देखा। बोली—"मैं अब से सदा इसी तरह जूड़ा बाँधा करूंगी। यही प्राचीन भारतीय शैली है, जो जावा में अब तक जीवित है।"

राजरतनम् ने पीछे मुड़कर देखा और कहा—"और भी बहुत-सी बातें होंगी जिनका मूल-स्रोत अपना प्यारा भारत है।"

कार चली जा रही थी। श्रीमती देसाई कह उठी—"जावा में टैगोर मेमोरियल बहुत काम कर रहा है। ऐसे मेमोरियल देश-देश में अवश्य स्थापित किये जाने चाहियें ताकि हर कहीं भारत का नाम उज्ज्वल हो जाय।"

देसाई बोला—"सब से पहले भारत की स्वतन्त्रता की आवश्यकता है।"

कल्याणी ने अन्तिम फैसले के अन्दाज़ में कहा—"स्वतन्त्रता

आने के पहले भारत मर चुका होगा।"

रेणु बराबर सलाइयाँ चलाये जा रही थी। उसकी आवाज राजरतनम् के मस्तिष्क में गूँजने लगी। उसने पीछे मुड़कर देखा कल्याणी चुप बैठी थी। सिर झुकाये, चेहरा घुमाये वह न जाने क्या सोच रही थी। शायद उसे अपनी कहानी की लड़की नज़र आ रही थी। राजरतनम् ने उसके काले चमकीले, तिकोने-से ढलके-ढलके जूड़े पर गहरे लाल अधखिले गुलाब की ओर निहारते हुए सोचा—अब कल्याणी इसी तरह खामोश बैठी रहेगी।

कार भागी जा रही थी। रेणु की सलाइयाँ तेज़-से-तेज़ होती गईं। इनकी सूक्ष्म-सी आवाज़ राजरतनम् के मस्तिष्क पर मानो हथौड़ी-सी चलाने लगी थी। जैसे रेणु की बगल में फैली हुई पीली शाल तेज़ी से भागती हुई कार के सामने तन गई हो और इस पर राजरतनम् के भयानक सपनों के साये तैरने लगे हों—रवीन्द्रनाथ ठाकुर रो रहे थे—उनके गान अपनी रंगीनी गँवा चुके थे—शरत् के उपन्यास सिसक रहे थे......

और ज्योंही देसाई दाईं ओर कार मोड़ने लगा राजरतनम् चीख उठा—"दाईं ओर नहीं, बाईं ओर जिधर वह बंगाल की बेटी खड़ी मुझे बुला रही है।"

ऑटोग्राफ बुक

मेज़ पर ऑटोग्राफ बुक पड़ी थी। वह सामने कुर्सी पर बैठा था। लगातार वह पाँच मिनट तक इस पुस्तक को घूरता रहा। फिर इसकी जिल्द उसकी आँखों में खुबने लगी। सारी जिल्द पर रँगा हुआ देसी चमड़ा लगाया गया था, जिसपर मुगल-शैली की नक्काशी की गई थी। जिल्द की बनावट से मालूम होता था कि उसे किसी सयाने जिल्दसाज ने तैयार किया है। उसने पुस्तक का स्पर्श किया, पर उसे ध्यान आया कि यह उस चौड़े नथनेवाले टूरिस्ट की पुस्तक है जिसके चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े गहरे दाग हैं और उसके जीवन में अभी तक समाजवाद ने इतना प्रवेश नहीं किया कि वह किसी की पुस्तक को यों छू सके। वह इस भावना को देर तक न रोक सका। उसने पुस्तक उठाई और इसके पृष्ठ पलटने लगा।

खासा मोटा डिमाई कागज था। कागज की चिकनी दूधिया सफेद सतह पर अक्षर अपने विशेष अन्दाज से इधर से उधर आ-जा रहे थे। उसने कागज को हाथ में लेकर मसला। फिर

अचानक उसकी नजर दायें कोने पर पड़ी। बड़े बड़े अक्षरों में लिखा था—इब्राहीम हिकमत अल्लाह।

वह चौंक पड़ा। उसे यों लगा कि वह एक बड़े पहाड़ के पैरों में खड़ा है और यह पहाड़ इतना ऊँचा है कि इसके शिखर की ओर निगाह उठाओ तो सिर चकरा जाय। निस्सन्देह यह वही सर इब्राहीम हिकमत अल्लाह हैं जिन्होंने पांच लाख रुपये खर्च करके बम्बई में एक नये पुस्तकालय का आलीशान भवन तैयार किया है। बम्बई के गवर्नर ने पुस्तकालय का उद्घाटन करते हुए कहा था—"सर हिकमत अल्लाह हिन्दुस्तान के महान् अध्ययनशील व्यक्तियों में से हैं और नये-नये पुस्तकालय खोलने की उन्हें धुन-सी लगी रहती है। यहां तक कि उन्होंने अपने जन्मग्राम में भी अपने स्वर्गवासी पिता के नाम से एक छोटा-सा पुस्तकालय कायम कर रखा है।" सहसा उसे यों लगा जैसे आकाश पर नया तारा जगमगाने लगा हो। उसने सोचा कि इतने बड़े व्यक्ति का आॅटोग्राफ ले सकनेवाला व्यक्ति कुछ कम विशेषता नहीं रखता। थोड़ी देर के बाद वह तारा उस टूरिस्ट की आँख में बदल गया। यह आँख उसे घूर रही थी। वह डर गया। आज्ञा के बिना किसी की वस्तु को हाथ लगाना एक बहुत बुरा कार्य है। उसे याद आया, जैसा कि उसने समाचारपत्र में पढ़ा था, बम्बई के गवर्नर ने सर इब्राहीम हिकमत अल्लाह के गले में चमेली के फूलों का हार डाला था। फिर उसने सोचा कि यदि वह टूरिस्ट इसी समय यहां आ निकले तो हो सकता है कि उसकी आँखों में गुणग्राहकता की चमक देखकर कहने लगे—खूब, खूब! आप को मेरी आॅटोग्राफ बुक खूब पसन्द आई। यदि टूरिस्ट यों अपना मत प्रकट करे तो वह यही समझेगा कि वह भी एक हिकमत अल्लाह है और वह टूरिस्ट बम्बई के गवर्नर का दर्जा रखता है। यह और बात है

कि इसके पश्चात् अपने गले में चमेली का हार न देखकर उसे झट यह खयाल आयेगा कि प्रत्येक व्यक्ति इतना भाग्यशाली नहीं होता कि बम्बई का गवर्नर उसके गले में हार डाले। फिर उसने एकाएक दो-तीन पृष्ठ पलटे और उसकी दृष्टि एक ऐसे व्यक्ति के नाम पर पड़ी जिसके सम्बन्ध में उसने कभी कुछ न सुना था—अमृतसागर। यह नाम कुछ बुरा न था, पर उसे टूरिस्ट की बुद्धि पर हँसी आ गई। खूब आदमियों में आदमी चुना। स्वयं अमृतसागर को चाहिये था कि वह अपना ऑटोग्राफ देने में संकोच करता। पर वह तो फूला न समाया होगा। उसने सोचा होगा कि वह इस प्रकार विख्यात हो जायगा और जैसे ही कोई इस ऑटोग्राफ बुक में उसका हस्ताक्षर पढ़ेगा मन ही मन में समझ लेगा कि अमृतसागर हिन्दुस्तान में कोई बड़ा आदमी था। मैं तो उसे निरा बौड़म समझता हूँ।

अमृतसागर को कोसता हुआ वह पृष्ठ पलटने लगा। वह किसी अच्छे-से नाम पर रुकना चाहता था। चार-पाँच छोड़, दस-पन्द्रह पृष्ठ पलटने पर भी उसकी इच्छा पूरी न हुई। वह आगे बढ़ता गया। सहसा वह रुक गया। लिखा था—अवनीन्द्रनाथ ठाकुर।

वह रतजगे के लिए तैयार हो गया। अब और पृष्ठ पलटना निरी मूर्खता होगी। अच्छा है कि इस एक ही ऑटोग्राफ का रस लिया जाय—एक ही नाम की माला जपी जाय रातभर। फिर उसे यों लगा कि सन्थाल लोग अपने जातीय नृत्य का उत्सव मना रहे हैं। अवनीन्द्रनाथ इस नृत्य का चित्र बनाने में मग्न हैं। रंग उठा-उठा कर वे कैनवास पर रखते जाते हैं। तूलिका के जादू की कुछ न पूछिये। फिर उसे यों लगा कि सन्थालों में मिल कर वह भी नाचने लगा है जिससे किसी प्रकार

इस चित्र में सम्मिलित हो जाय।

उसे वे दिन याद आ गये, जब आधुनिक भारतीय चित्र-कला के सर्वप्रथम पथ-प्रदर्शक अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का काम उसे रंगों का एक व्यर्थ खेल प्रतीत हुआ करता था। उसके भाई ने उसके नाम एक वर्ष के लिये 'विशाल भारत' जारी कर दिया था और प्रायः प्रतिमास नया अंक आने पर इसी बात पर आश्चर्य किया करता था कि ये लोग इतने अच्छे लेख दे सकते हैं तो चित्रकला के अच्छे नमूनों का प्रबन्ध क्यों नहीं कर सकते। इससे तो यही अच्छा हो कि इन रंगीन पहेलियों के स्थान पर उच्च कोटि के फोटोग्राफ़ी के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर दिये जाया करें। फिर जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी तूलिका उठा कर चित्रकार बन गये और उनकी इस नई कला के इस पत्रिका में दर्शन होने लगे तो शुरू-शुरू में उसे यही अनुभव हुआ था कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर रूल के साथ रेखाएँ खींच कर तूलिका से रंग भर देते होंगे। रवीन्द्रनाथ के चित्रों के सम्बन्ध में अब भी उसका यही मत था। पर आधुनिक भारतीय चित्रकारों की कला उसे बहुत महान् नज़र आती थी और वह इस बात पर आश्चर्य करता था कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कविता से समय निकालकर इस विचित्र-सी चित्रकला में समय खर्च करना क्यों आरम्भ कर दिया है।

फिर जब उसने आँखें खोलीं तो देखा कि ऑटोग्राफ बुक खुली पड़ी है और हिन्दुस्तान के महान् चित्रकार का ऑटोग्राफ अपनी सुन्दर भाव-भंगियों सहित प्रस्तुत है—अवनीन्द्रनाथ ठाकुर।

ऊपर बिजली का बल्ब लगा हुआ था। बहुत-से पतंगे बल्ब के चारों ओर सिर पटक रहे थे। उसे यों लगा जैसे वह स्वयं भी एक पतंगा हो और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम ऑटोग्राफ बुक के पृष्ठ पर बिजली के बल्ब की तरह रोशन हो उठा हो।

नये युग के मनोरंजन भी नये हैं, उसने सोचा, जीवन के बँधे हुए कार्यक्रम के बीचोबीच कोई मनोरंजन तो होना ही चाहिये। बँधे हुए कार्यों से मन उकता जाता है। मनोरंजन निरन्तर कायापलट करते रहते हैं, शिथिल भावनाओं को सह-लाते रहते हैं। पर इस दृष्टि से तो सारा जीवन ही मनोरंजन बन गया है। वह नये-नये स्थानों पर पहुँचता है, बड़े-बड़े व्यक्तियों के ऑटोग्राफ प्राप्त करता है। कभी तो वह भी थक जाता होगा। कभी क्यों अक्सर, क्योंकि चाहे कोई कार्य मनोरंजन के रूप में ही आरम्भ किया जाय जब वह सारे जीवन पर छा जाता है तो यह बँधे हुए कार्यों का रूप धारण कर लेता है। इससे भी मन उकता सकता है।

दिल से बातें करता हुआ वह कमरे की उमस को पूरी तरह भूल न सका था। पहले तो उसके जी में आया कि ऑटोग्राफ बुक को बन्द करके परे अपने स्थान पर रख दे और बिजली बुझाकर बाहर जा बैठे या शान्ति-निकेतन के किसी विद्यार्थी के साथ बाहर सैर करने निकल जाय। पर ऑटोग्राफ बुक ने उसे न छोड़ा। बात यह थी कि उस दिन सर्वप्रथम यह पुस्तक उसकी नज़र पड़ी थी। यद्यपि वह टूरिस्ट उसके शान्ति-निकेतन आने के तीसरे दिन ही आ पहुँचा था और पूरे सप्ताह से उसके साथ पान्थनिवास के कमरे में ठहरा हुआ था, यह पुस्तक देखने से पहले वह यही समझता था कि वह टूरिस्ट यों ही कोई सिरफिरा युवक है और किसी प्रकार माता-पिता की आज्ञा के बिना ही घर से बाहर निकल भागा है। पर ऑटोग्राफ के बहाने से बड़े-बड़े लोगों से मिलना क्या कम महत्व रखता है? क्या यह जीवन सचमुच एक मृगतृष्णा है? नहीं तो। ये ऑटोग्राफ तो मृगतृष्णा के सिद्धान्त को साफ झुठलाते नजर आते हैं। सर इब्राहीम हिकमत अल्लाह का नाम यहां

मौजूद है। चाहे यहां यह नहीं लिखा कि उन्होंने बहुत-से पुस्तकालय खोले और स्वयं उनके गले में बम्बई के गवर्नर ने चमेली के फूलों का हार डाला। अमृतसागर महोदय भी यहां जगमगा रहे हैं—भोर के तारे के समान। चाहे मैंने किसी सिलसिले में उनकी महानता का सिक्का स्वीकार नहीं किया। शायद उन्होंने भी कोई महान् कार्य किया हो...और फिर अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम ! यह सब मृगतृष्णा नहीं हो सकती। विशेष रूप से अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम अपने सम्मुख देखकर मुझे उतनी ही खुशी हो रही है जितनी किसी को ताज-महल देखकर होती...यदि वह शान्ति-निकेतन के बजाय घर पर होता और वहां टूरिस्ट उसके पास आकर ठहरता तो वह अवनीन्द्रनाथ का ऑटोग्राफ देखकर अपने पैरों में घुँघरू बाँध लेता और नाचता हुआ उच्च स्वर से गाने लगता और उसे इस मस्ती की अवस्था में देखकर यह टूरिस्ट कहता—अरे भई ! तुम एक अवनीन्द्रनाथ का नाम पढ़कर नाचने लग गये। इस ऑटोग्राफ बुक के और पृष्ठ पलटो। इनसे भी बड़े-बड़े नाम मिलेंगे। और वह उसका मुंह बन्द कर देता—चुप रहिए महोदय! मैं समझ गया। तुमने केवल ऑटोग्राफ जमा किये हैं। तुम यह नहीं जानते कि वास्तविक महानता किन-किन नामों के साथ सम्बद्ध है। फिर तुम यह भी चाहोगे कि मैं अमृतसागर का नाम पढ़कर भी नाचूँ। हा-हा, ही-ही ! अमृतसागर भी हिन्दुस्तान का नया सितारा है !

हवा बन्द थी। कमरे में प्रतिपल उमस बढ़ रही थी। सहसा उसके मन में आया—होगी यह ऑटोग्राफ बुक और होंगे ये सब बड़े आदमी जिन्होंने अपना नाम अपने-अपने हाथ से लिख रखा है। क्या लाभ है कि इतनी गर्मी में यहां बैठा जाय ? फिर जब अनचाहे ही अगला पृष्ठ पलटा तो फिर ऑटोग्राफ बुक ने

अपना जादू डाल दिया। लिखा था—मेरा मन मानो अजन्ता की एक गुफा है और तुम्हारा ऑटोग्राफ इस गुफा का अमिट चित्र।

इसके नीचे माणिकलाल रसिकलाल रावल का ऑटोग्राफ नजर आ रहा था। उसने सोचा यह रावल साहब कौन हैं? अपने इन शब्दों में उन्होंने किसे सम्बोधित किया है। शायद यह कोई अविवाहिता कन्या हो। अविवाहिता ही क्यों, किसी भी प्रकार की एक नारी। नारी की हर वस्तु ही एक चित्र होती है, केवल उसका ऑटोग्राफ ही नहीं। पर स्वयं रावल साहब ने कैसे समझ लिया कि उनका मन गुफा के समान है। यह तो अपने मुँह मियां मिट्ठू वाली बात हुई। उन्हें इस नारी से प्रेम था तो यों अपने ऑटोग्राफ द्वारा इस रहस्य को प्रकट करने में उन्हें क्या लाभ नजर आया? कदाचित् वे यह कहना चाहते थे कि इस टूरिस्ट का मन भी उनके ऑटोग्राफ को एक अमिट चित्र के रूप में स्वीकार करे और यह केवल ऑटोग्राफ बुक तक ही सीमित न रहे।

उसने ऑटोग्राफ बुक को बन्द कर दिया। वह चाहता था कि उठकर बाहर खुली हवा में चला जाय। उसे एक अरबी लोकोक्ति याद आ गई—इन्सान कपड़ों में छिपे हुए भेड़िये हैं। क्या यह सब भेड़ियों के ऑटोग्राफ हैं? यह टूरिस्ट स्वयं भी एक भेड़िया है क्या? मैं भी भेड़िया हूँ?...नहीं नहीं, यह मैं क्या सोच रहा हूँ? इस ऑटोग्राफ बुक में तो मनोरंजन की महान् सामग्री प्रस्तुत की गयी है और निस्सन्देह ये सब ऑटोग्राफ भले आदमियों के ही हैं। देशप्रेम भी तो यों स्वार्थ ही का एक रूप है। पर इसके बिना गुजारा भी तो नहीं है। देशप्रेम के लिए मर मिटनेवाले ख्याति के पीछे दौड़ते हैं। क्या यह पाप है? अप्रसिद्ध रहने को ही बड़ा धर्म मान लिया जाय? क्या वे

अप्रसिद्ध लोग जिनसे कभी इस टूरिस्ट ने ऑटोग्राफ के लिए प्रार्थना नहीं की, इन लोगों से बहुत अच्छे हैं जिनके नाम इस ऑटोग्राफ बुक में हैं ?

वह फिर भूल गया कि कमरे में उमस बढ़ रही है। काश कि ऑटोग्राफ बुक मेरी होती, वह सोचने लगा, तो मुझे कितनी खुशी होती। पर यह मेरी कैसे हो सकती है ? मैंने इसके लिए कुछ भी तो परिश्रम नहीं किया। बस, इसे देख रहा हूँ और खुश हो रहा हूँ। यह खुशी भी तो कुछ कम नहीं। फिर अधिकार की इच्छा क्यों ? इसे उठाकर भाग जाऊँ, यह तो पाप होगा— चोरी ! पर चोरी की इच्छा भी तो पाप है। उँह, चोरी की इच्छा भी पाप है तो अब तक इसे उठाकर मैं भाग क्यों नहीं गया ?... इस ऑटोग्राफ बुक में ऐसी कौन-सी चीज है जो मुझे अपनी ओर खींचती है ? किसी-किसी ऑटोग्राफ के अक्षर तो बूढ़े भारत की गीली आँखों को मेरे सम्मुख ले आते हैं। क्या-क्या संकेत करती हैं ये आँखें ! कैसी-कैसी गाथाएँ सुनाती हैं ये आँखें ! खिड़की के बाहर अँधेरा छाया था और दूर, बहुत दूर आकाश पर एक तारा टूटा। यह तारा धरती की ओर लपका। उसे झट याद आया कि उसने रूसी-साहित्य की किसी पुस्तक में पढ़ा था जब कोई तारा गिरता है तो वह इस बात की ओर संकेत करता है कि कोई पीड़ित आत्मा वेदनाग्रस्त है या कोई माँ इस धरती पर बसी हुई दुनियाँ को याद कर रही है और सच तो यह है कि जब कोई तारा टूटकर धरती पर गिरता दिखाई दे, यह समझ लेना चाहिये कि उसी घड़ी किसी भले पुरुष या नारी ने जन्म लिया है और यह भी तो असम्भव नहीं कि उस भले पुरुष या नारी का ऑटोग्राफ भी किसी दिन इस पुस्तक के किसी पृष्ठ पर विराजमान हो जायगा।

साँस चलने से तो इतना ही प्रतीत होता है कि मनुष्य

जीवित है। भले-बुरे की पहचान तो उसका कार्य देखने से ही होती है। वह सोचने लगा, अच्छा है कि यह टूरिस्ट उसके समान पुरानी खाँसी का बीमार नहीं और अपनी ऑटोग्राफ बुक उठाये नगर-नगर घूमता फिरता है। शारीरिक स्वास्थ्य के बिना कौन दूर-दूर उड़ सकता है? उसका स्वभाव भी बुरा नहीं। बालकों में वह बालक बन जाता है और उनकी तरह ही गला फाड़कर कहकहा लगाता है और उस समय यह भूल जाता है कि वह तो एक रेशम का कीडा है क्योंकि सैकड़ों ऑटोग्राफ जमा करते-करते उसके चतुर्दिक एक आवरण-सा बन गया है।

वह टूरिस्ट की बाट जोहने लगा। किधर निकल गया? वापसी का ध्यान ही नहीं रहा। सवेरे से ऐसे गया है कि दोपहर का भोजन भी बाहर खाया होगा और क्या ठीक कुछ मिला भी या अँतड़ियाँ योंही कुलबुलाती रहीं? किसी काम की ओर गया होगा। नहीं तो ऑटोग्राफ बुक कमरे में न छोड़ गया होता। गाँव तो ठहरा अप्रसिद्ध लोगों का घोंसला। वहाँ वह भला किससे ऑटोग्राफ माँग सकता था?

टूरिस्ट यह रात कहीं बाहर ही गुजारेगा, यह सोचकर वह अन्दर अपनी चारपाई पर आ बैठा। अब यहाँ उमस न थी। हवा चल रही थी। दर्पण में उसने अपना चेहरा देखा। अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में एक अजीब-सी उदासी देखकर वह सहम गया। टूरिस्ट की आँखें तो सदा मुस्कराती नजर आती हैं। दर्पण के सामने बैठा-बैठा वह खाँसने लगा। और एक भयानक-सी हँसी उसके होठों के कोने पर फैल गई। यह खाँसी मुझे खाकर छोड़ेगी, वह सोचने लगा, गले में ही नहीं, मेरे सिर के भीतर भी न जाने कौन मूसल चलाता रहता है। भावुक तो मैं बचपन से ही हूँ। यह खाँसी न जाने कैसे मेरे भीतर घुस आई? वैसे तो जीवन की रेजगारी लेते समय हमारे पास कई बीमारियाँ

चली आती हैं। छोटी बीमारियाँ, बड़ी बीमारियाँ। यह खाँसी कहलाती तो है छोटी बीमारी, पर मैं इसके हाथों कितना परेशान हूँ।

अनचाहे ही उसने ऑटोग्राफ बुक फिर उठाई और फिर किसी ऐसे व्यक्ति का ऑटोग्राफ ढूँढ़ने लगा जो कि उसी की तरह खांसी का बीमार हो। यह पता चलना कुछ कठिन तो नहीं। अक्षरों की बनावट ही यह प्रकट कर देगी। सम्भव है किसी महोदय को ठीक ऑटोग्राफ देते समय खांसी का जबर्दस्त धक्का लगा हो। वह झुंझला उठा। उसे ऐसा कोई ऑटोग्राफ दिखलाई नहीं दे रहा था। उसे यों लगा कि उसके माथे पर अनगिनत चींटिया रेंग रही हैं; और ये उसके मन तक सुरंग खोदने जा रही हैं...फिर उसने सोचा कि खांसी के बीमार का ऑटोग्राफ ढूंढ़ने का यत्न निरी मूर्खता है। किसी का घायल व्यक्तित्व इतना ओछा कार्य करने पर उतर आये और इसमें उसे रस आये तो समझ लीजिये वह इन्सान नहीं रहा।

वह बराबर ऑटोग्राफ बुक के पृष्ठ पलट रहा था। उसने सोचा कि जिस प्रकार पुरानी शराब अधिक नशीली होती है उसी प्रकार ऑटोग्राफ बुक की जितनी पुरानी होती जाती है उतना ही उसका मूल्य बढ़ता जाता है।

सहसा उसकी नजर एक जगह जम गई। लिखा था—मो० क० गांधी। उसकी आंखें मस्त हो गईं। यह पुस्तक महात्मा गांधी ने पकड़ी होगी। अपने हाथ से अपना नाम लिखा होगा—'मो०क०गांधी' अर्थात् मोहनदास कर्मचन्द गांधी—अपने हाथ से! ये अक्षर स्थिर और मूक हैं। शान्त आत्मा के समान। हाँ, इनका प्रभाव इतना विशाल है कि वे लिखे गये हैं काली स्याही से और मुझे वे सुनहरे प्रतीत होते हैं। अपने हाथ से

अपना यह ऑटोग्राफ दिया होगा, अपने हाथ से ! आज उनकी गणना संसार के महापुरुषों में है। अपनी अंगुलियों में लेखनी पकड़कर इस कागज पर लिखा होगा—अपनी अंगुलियों में लेखनी पकड़ कर....

वह सोचने लगा कि सागर की लहरें भी तट पर अपने नाम लिखती रहती हैं। ठीक तो है, वे रेखाओं के लहराव जो लहरों का एक रेला आने के पश्चात् तट की ओर हमारा ध्यान खींच लेते हैं, लहरों के ऑटोग्राफ ही तो होते हैं। यह और बात है कि लहरों का रेला पहले ऑटोग्राफ के स्थान पर नया ऑटोग्राफ छोड़ जाता है। पर इस ऑटोग्राफ की शान अलग है। यहाँ हर आदमी अपने स्थान पर अपना नाम लिखता है। इसीलिये सर इब्राहीम हिकमत अल्लाह के ऑटोग्राफ के पश्चात् अमृतसागर को अपना नाम लिखने के लिये अलग स्थान मिला। माणिकलाल रसिकलाल रावल को भी अलग स्थान मिला और महात्मा गांधी के लिये पूरा पृष्ठ छोड़ दिया गया है। यह तो आवश्यक था। चारों ओर सफेदी न होती तो सुन्दरता ही मारी जाती। उसे याद आया कि महात्मा गांधी भी इधर पक्के कारोबारी आदमी बन गये हैं। पिछले महीने की बात है कि किसी प्रेस फोटोग्राफर ने समीप से उनका फोटो लेना चाहा। उन्होंने उससे पन्द्रह रुपये वसूल कर लिये। हरिजन-निधि में चला गया यह रुपया। स्वयं उनके पास नहीं रहा। पर रुपया प्राप्त करने का उपाय तो कारोबारी सिद्धान्त पर टिका हुआ है। ऑटोग्राफ की फीस भी निश्चित कर रखी है उन्होंने—पांच रुपये। एक विद्यार्थी किसी रेलवे स्टेशन पर उनके पास आया। उसने दस रुपये का नोट उनके हाथ में दिया और ऑटोग्राफ प्राप्त कर लिया। गाड़ी चलने में अधिक देर नहीं थी। बाकी के पांच रुपये मांगते उसे शर्म आती थी। इंजिन ने सीटी दी।

गांधीजी मुस्करा कर बोले—बाकी के पांच रुपये भी मैं रख लेता हूँ हरिजनों के लिए, और गाड़ी चल दी। हा-हा, ही-ही ! वह विद्यार्थी हक्का-बक्का-सा रह गया। पर यह टूरिस्ट इतना मूर्ख न निकला होगा। उसने केवल पाँच रुपये का नोट दिया होगा। तारीख तो लिखी ही नहीं। पाँच रुपये तो दिये, पूरा लाभ नहीं उठाया। इसी को अनुभवहीनता कहते हैं। इस अवस्था में तो केवल ऑटोग्राफ से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। कोई संक्षिप्त-सा सन्देश लेने के लिये अनुरोध करना चाहिये और इसके साथ तारीख के अतिरिक्त उस स्थान का नाम जहाँ यह ऑटोग्राफ दिया गया और वह समय भी जब लेखनी अपना काम करके रुकी, दर्ज होना चाहिये। पर यह सब बातें अनुभव ही सिखाता है।

उसने अपनी आंखें मूंद लीं। फिर उनकी पलकों की दर्ज़ों में से महात्मा गांधी के ऑटोग्राफ का रस लेने लगा। उसके मन की विचित्र अवस्था थी। जब वह काश्मीर गया था तो उसके पास एक दूरबीन थी। उसे याद आया कि किस प्रकार वह दूरबीन उठाये घूमा करता था। अब आँखें बन्द करके दर्ज़ों में से ऑटोग्राफ के अक्षर देखते समय उसे यों लगा कि वह दूरबीन लगाकर दूर, बहुत दूर, ऊँचे पहाड़ देख रहा है जिनकी बर्फ से ढकी चोटियां सिरे से चांदी में ढली नजर आ रही हैं......यह पुस्तक महात्मा गांधी ने पकड़ी होगी। अपने हाथ से अपना नाम लिखा होगा, अपने हाथ से !

पतंगे बराबर बिजली के बल्ब पर सिर पटक रहे थे। केवल एक शब्द उनको समझ में आया—बलिदान...बलिदान.......बलिदान ! महात्मा गाँधी का नाम लेते ही बलिदान का अर्थ समझ में आ जाता है। किसका बलिदान ? अपने आपका, अपने तन का, अपने मन का बलिदान। संसार की राजनीति में आज

जो हिन्दुस्तान का इतना नाम है आखिर किसके कारण है—महात्मा गाँधी के त्याग के कारण ही । अपनी अँगुलियों में लेखनी पकड़कर इस कागज पर नाम लिखा होगा, अपनी अँगुलियों में लेखनी पकड़कर...

अगले पृष्ठ पर 'अमृतबाजार पत्रिका' के सम्पादक का नाम नजर पड़ा। पहले उसने सोचा, यहाँ भी थोड़ी देर रुका जाय। पर हिन्दुस्तान की पत्रकारिता का हलका-सा विश्लेषण करता हुआ वह आगे बढ़ गया। फिर उसकी नजर सेठ दामोदरदास के आॅटोग्राफ पर पड़ी। भद्दे से अक्षरों में सेठजी ने अपना नाम लिखा था। उसे बहुत क्रोध आया। यह कहाँ का बड़ा आदमी है ? पूँजीपति वह जरूर है। जरा कम अभिमानी होगा। इस टूरिस्ट की थोड़ी-बहुत खातिर कर दी होगी। खातिर क्या की, रिश्वत दी। नहीं तो यह टूरिस्ट कब उसे आॅटोग्राफ बुक में नाम लिखने देता।

सेठजी को कोसता हुआ वह पृष्ठ पलटता रहा। उसे ध्यान न रहा कि इस प्रकार बिना देखे ही पृष्ठ पलटने से वह किसी महापुरुष का आॅटोग्राफ देखने से वंचित रह जायगा। उसका विचार था कि महापुरुषों के नाम इतिहास के श्याम-पट पर तारों की तरह उदय होते हैं या यह समझिये कि वे उन नन्हें चमकदार सुनहरे कणों के समान होते हैं जो बड़े ध्यान से दुलहन की मांग में जमाये जाते हैं। बड़े आदमियों के ही आॅटोग्राफ जमा करने चाहियें। सेठ दामोमरदास कौन-सा तारों में तारा है या कौन-सा जीवन-वधू की मांग पर जमाया हुआ सुनहरा कण है ? उसने तो केवल जोंक के समान गरीबों का लहू चूसने का अभ्यास किया होगा अब तक। किस मुँह से उसने अपना नाम लिख दिया इस आॅटोग्राफ बुक में, जहाँ सर इब्राहीम हिकमत अल्लाह और महात्मा गाँधी जैसे महान

व्यक्तियों के नाम हैं ? उसे इतना क्रोध आ रहा था कि उसने फिर से वह पृष्ठ निकाल लिया जहाँ सेठजी ने भद्दे अक्षरों में अपना नाम लिख डाला था। वह उस पर कलम फेर देना चाहता था। पर फिर अनचाहे ही इसे इसके हाल पर छोड़कर अगले पृष्ठ पलटने लगा—कभी पीछे से आगे की ओर, और कभी आगे से पीछे की ओर। उस समय उसकी अँगुलियों में न जाने कहाँ से इतनी तेजी आ गई थी। सच पूछो तो उसका मन वूलर झील की तरह था जिसमें से गुजरकर जेहलम अपने रास्ते को न भूलता हुआ आगे बढ़ता है। इधर-उधर ऊँचे पहाड़ सिर उठाये खड़े हैं। हवा ने जोर पकड़ लिया है। पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस फुट ऊँची लहरें उठ रही हैं—तूफानी लहरें ! ये लहरें डोंगों और किश्तियों को अपनी गोद में लेने के लिए उत्सुक हैं; जैसे रोज दिन-दहाड़े पूँजीवाद की मशीनें पृथ्वीपुत्रों की कमाई को अपने गले में उँड़ेलती रहती हैं। उसके मन में भावनाओं की भयानक लहरें उठ रही थीं और यह सेठ दामोदरदास का सौभाग्य था कि उसने मेज पर पड़ा हुआ ब्लेड उठाकर सेठजी का नाम ऑटोग्राफ बुक में से खुरच नहीं डाला।

कई ऑटोग्राफ बासी फूलों की तरह उदास पड़े थे—अपनी कुरूपता पर स्वयं ही लज्जित। कुछ कम चमकीले तारों के समान थे, कुछ आँखों पर झुकी हुई मोटी-मोटी काली भवों के समान। कुछ प्रफुल्लित ओठों के समान जिन पर आनन्द की हल्की-सी मुस्कान छा गई हो। कुछ बालों के समान बारीक, कुछ अँगुलियों के समान मोटे....फिर उसने सोचा कि इन उपमाओं के पीछे पड़ने से कुछ लाभ न होगा।

सहसा उसकी नजर फिर एक जगह जम गई। लिखा था—

ऑटोग्राफ के लिए किसी को दिक न करो।

जवाहरलाल नेहरू

पण्डित जवाहरलाल नेहरू का आॅटोग्राफ !.......आॅटोग्राफ के लिए किसी को दिक न करो—पण्डितजी ने यह रूखा-सा वाक्य क्यों लिख दिया ? और फिर अपना आॅटोग्राफ भी दे दिया। बड़े आश्चर्य की बात है। पण्डितजी तो भारत के एक महान् व्यक्ति हैं। इतने महान् व्यक्ति की लेखनी से इतना रूखापन ! इस टूरिस्ट को देखकर वे झुँझला उठे होंगे। यह ठीक है कि बीसों टूरिस्ट हमारे नेताओं को दिक किया करते हैं। नेता भी आखिर इन्सान होते हैं, तंग आ जाते हैं। पण्डित-जी ने यही उपयुक्त समझा होगा कि अपने मन का भाव प्रकट कर दें जिससे यह टूरिस्ट अन्य नेताओं को तंग न करता फिरे। पर पण्डितजी को यों झुँझलाने से संकोच करना चाहिये था। प्रतिबन्ध आवश्यक हो तो पण्डितजी भी आॅटोग्राफ के लिए कोई फीस निश्चित कर दें। यों कांग्रेस-निधि की सहायता की जा सकती है। तो क्या एक दिन सब नेता आॅटोग्राफ के लिए फ़ीस नियत कर देंगे ?......एक बार फिर वह चिन्तन में खो गया। पण्डितजी ने यह वाक्य क्यों लिखा—आॅटोग्राफ के लिए किसी को दिक न करो......हो सकता है पहले पण्डितजी ने अपना नाम लिख दिया हो और फिर यह टूरिस्ट उनकी लेखनी से एक-आध वाक्य के लिये अनुरोध करने लगा हो। पण्डितजी ने कहा होगा—कुछ भी लिख दूं, स्वीकार होगा ? और इस टूरिस्ट के 'हां' में सिर हिलाने पर उन्होंने यह वाक्य लिख दिया होगा—आॅटोग्राफ के लिए किसी को दिक न करो।

सहसा उसे ध्यान आया कि संसार में प्रत्येक मनुष्य किसी बड़े आदर्श के लिए जी रहा है। यह टूरिस्ट बड़े आदमियों के आॅटोग्राफ लेता फिरता है, पर वह स्वयं भी कम बड़ा नहीं है। फिर उसकी नजर ब्ल्यू-ब्लैक स्याही से लिखे हुए एक आॅटोगाफ पर पड़ी—

कोई भी आदमी वस्तुतः तुच्छ नहीं है। यदि वह अपने आप को बड़ा समझे तो वह निस्संदेह बड़ा है।

प्रेमचन्द

निस्सन्देह, यह विख्यात् कहानी-लेखक प्रेमचन्द का ऑटोग्राफ है। उसने प्रेमचन्द की बहुत-सी कहानियां पढ़ रखी थीं। उसे इस समय प्रेमचन्द के इस संदेश से बहुत प्रोत्साहन मिला। उसने सोचा कि वह भी एक बड़ा आदमी है। अपने गाँव में आर्यपुत्री पाठशाला चलाकर उसने एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। खोले होंगे सर इब्राहीम हिकमत अल्लाह ने बड़े-बड़े पुस्तकालय। कन्याओं की शिक्षा के लिए विद्यालय खोलना, चाहे यह विद्यालय पांचवीं कक्षा तक ही हो, कुछ कम विशेषता नहीं रखता......

उसने खिड़की से झांक कर देखा कि पूरे चांद का रंग फीका पड़ गया है। कोई और समय होता तो वह सोचता कि उसका जीवन भी चांद की तरह फीका पड़ गया है। पर अब तो उसे एक नये ही जीवन का अनुभव हो रहा है। मानो वह चांद को भी उच्च स्वर से पुकार कर कहना चाहता था कि फीका पड़ने से क्या लाभ है, यों अपने को तुच्छ समझने से क्या लाभ है। यदि वह अपने आप को बड़ा समझे तो वह निस्सन्देह बड़ा है।

वह सोचने लगा कि यह प्रेमचन्द का मौलिक विचार प्रतीत नहीं होता। कदाचित् यह किसी महापुरुष की पुरानी सूक्ति है। वह यह भूल गया कि वह पुरानी खांसी का बीमार है। उसकी आत्मा का कण-कण जाग उठा और यह विचार कि वह एक बड़ा आदमी है, उसकी आत्मा की गहराइयों में गूँजने लगा... बड़ा तो मैं हूँ ही, एक फीकी-सी हँसी हँसते हुए उसने अपने मन से कहा, बड़ा तो मैं हूँ ही ! मैं ही क्यों, हर आदमी बड़ा है। अर्थात् हर आदमी को समझना चाहिये कि वह बड़ा आदमी है।

एडगर ऐलन पो ने ठीक ही तो लिखा है, वह सोचने लगा—"मुझे ख्याति से प्रेम है। मैं ख्याति को पूजता हूँ। ख्याति का मदिरा-पात्र मैं तलछट तक पीने को तैयार हूँ। मैं चाहता हूँ कि इस धरती के हर नगर और हर कस्बे से, हर मैदान और हर घाटी से मेरे सम्मान में सुगन्धित धुएँ ऊँचे उठें। ख्याति और सम्मान, इनका श्वास जीवनदायक है। यह जीता-जागता, चमकता रक्त है। जब तक आदमी ख्याति नहीं पा लेता, वह मानो जीवित ही नहीं होता।"......पर वह केवल ख्याति को ही बड़ा होने की कसौटी नहीं मान सकता। महानता का तत्त्व तो हर आदमी में होता ही है। बस, उसे स्वयं इससे परिचित हो जाना चाहिये।

वह उठ खड़ा हुआ और कमरे में घूमने लगा। उस पर मस्ती-सी छा गई। खिड़की के बाहर फीका चांद उतना फीका नहीं रह गया था। कदाचित् चांद ने भी किसी प्रकार मेरा भाव समझ लिया है, उसने सोचा, चांद अब भी अधिक से अधिक चमका करेगा। मैं भी चमकूँगा......पर इस टूरिस्ट ने मुझ से मेरा ऑटोग्राफ क्यों नहीं मांगा अब तक। अमृतसागर में उसने कौन-सी महानता देख ली थी?......नहीं नहीं, यह मैं नहीं कहता कि वह बड़ा नहीं है। यदि वह समझ ले तो वह अवश्य बड़ा है। पर मैं भी बड़ा आदमी हूँ। मेरा ऑटोग्राफ इस पुस्तक में अवश्य होना चाहिये।

वह फिर बैठ गया। उसने ऑटोग्राफ बुक उठा ली। खाली पृष्ठ गिने। इन पर उड़ीसा और आंध्रदेश के बड़े आदमियों के ऑटोग्राफ लिये जायँगे। स्वयं टूरिस्ट ने उसे बताया था कि वह बाकी सारे हिन्दुस्तान की यात्रा कर चुका है। यह ऑटोग्राफ बुक बनवाते समय उसने सरसरी नज़र से देख लिया होगा कि हर प्रान्त के लिए कितने पृष्ठ आवश्यक होंगे। इनमें से एक पृष्ठ अब

मेरा है।

उसने लेखनी उठा ली। उसकी विचित्र अवस्था थी। वह एक नया आदमी था—आधा आदमी, आधा देवता! खिड़की से बाहर सिर निकाल कर उसने आकाश पर नजर डाली। आकाश-गंगा की ओर टकटकी बाँधे देखता रहा। यह भी किसी का ऑटोग्राफ है। हां, अवश्य, किसी का ऑटोग्राफ है यह। भगवान का ऑटोग्राफ है! नहीं नहीं, शैतान का ऑटोग्राफ है! पर शायद यह दोनों का ऑटोग्राफ है—भगवान और शैतान दोनों का। पर अभी यह सोचने का अवकाश नहीं। कभी फिर सही......

वह ऑटोग्राफ बुक लेकर चारपाई पर बैठ गया। जहां से खाली पृष्ठ आरम्भ होते थे वहां से पहले पृष्ठ पर ही उसे लिखना होगा। किस प्रकार आरम्भ करे? वह सोचने लगा।

एक मिनट, डेढ़ मिनट, दो मिनट। अब यह पृष्ठ तो मेरी सम्पत्ति है। हां, अवश्य। जो चाहूँ, लिखूं। केवल अपना ऑटोग्राफ ही क्यों न अंकित कर दूं? उस अवस्था में कहीं यह टूरिस्ट पांच-सात अन्य व्यक्तियों के ऑटोग्राफ के लिए स्थान न निकाल ले। इस जमघट में मेरा नाम दब जायगा। नहीं नहीं, केवल ऑटोग्राफ का विचार उपयुक्त नहीं। यह सारा पृष्ठ मेरा है। वह लिख रहा था—

> यह ठीक है कि टूरिस्ट महोदय ने मुझ से मेरा ऑटो-ग्राफ नहीं मांगा लेकिन मैं नहीं समझता कि किसी कार्य के लिए अपनी सेवायें प्रस्तुत करने में किसी प्रकार की बुराई की कल्पना की जा सकती है। इस समय मैं एक मस्त दीवाना हूँ। मुझे अपनी महानता का अनुभव है, विश्वास है। कोई मेरी महानता मुझ से छीन नहीं सकता।
>
> महानता, ख्याति, ऑटोग्राफ।

अपने गांव में मैंने एक पुत्री-पाठशाला चला रखी है। यह एक तथ्य है। मैं नहीं कहता कि मैंने एक महामहिम कार्य किया है। बस, काफी है, मैंने एक बड़ा काम किया है।

महानता और ख्याति में निकट-सम्बन्ध है और सत्य तो यह है कि महानता और ख्याति ऑटोग्राफ बुक का शृंगार हैं। यह ऑटोग्राफ बुक पहली बार मेरी नजर पड़ी है। स्वयं टूरिस्ट कहीं बाहर चला गया है। कौन जाने कि उसे आज खाने को भी मिला या नहीं...महानता, ख्याति और भोजन...और फिर ऑटोग्राफ बुक...

वह लिखता गया, सारा पृष्ठ भर गया। उसकी लेखनी न रुकी। दूसरा पृष्ठ, तीसरा पृष्ठ, फिर और, फिर और। वह एक नया आदमी बन गया था—आधा आदमी आधा देवता !

टूरिस्ट महोदय ने अनगिनत स्थानों की यात्रा की है। यह जो इतने ऑटोग्राफ दिखाई दे रहे हैं, इस बात का प्रमाण हैं कि उसने यात्रा की है, अवश्य की है।

कौन जाने वह यात्रा के लिए कहां से धन प्राप्त करता है। इस निर्धन देश में कौन पहचानता है टूरिस्ट को और उसके महत्त्व को !

इस ऑटोग्राफ बुक में उड़ीसा और आंध्रदेश को छोड़ कर समूचे भारत की आत्मा थिरकती है और जब उड़ीसा और आंध्रदेश के बड़े आदमियों के ऑटोग्राफ भी इस पुस्तक में आ जायँगे तो यह कितनी बहुमूल्य वस्तु होगी, सचमुच कितनी बहुमूल्य......

भावना के अतिरेक में वह यह भी भूल गया कि वह यों ही बेचारे टूरिस्ट की पुस्तक खराब कर रहा है और जिन पृष्ठों पर वह अपना लम्बा लेख लिख रहा है, उन पर उड़ीसा और आंध्रदेश के सैकड़ों बड़े आदमियों के ऑटोग्रफ लिये जाने

थे। जब टूरिस्ट ने यह पुस्तक तैयार कराई होगी उसने अवश्य यह सोचा होगा कि इस पुस्तक के वृहदाकार में सारे हिन्दुस्तान के बड़े आदमियों के ऑटोग्राफ आजायँगे और जिल्द तोड़कर नये कागज न लगाने पड़ेंगे जिससे खामख्वाह यह सन्देह हो सकता है कि बाद के पृष्ठों के ऑटोग्राफ उसने स्वयं प्राप्त नहीं किये हैं, बल्कि किसी मित्र-द्वारा उसके पास आये हैं। और न ही वह इस विचार का समर्थक था कि जब यह बड़ी पुस्तक समाप्त हो जाय तो किसी दूसरी पुस्तक में ऑटोग्राफ लेने आरम्भ कर दिये जायँ।

जब सब के सब खाली पृष्ठ भर गये अर्थात् जब वह पूरे उड़ीसा और आंध्रदेश की लम्बाई और चौड़ाई से भी बड़ा बन गया उसने अपना नाम लिख डाला—

धर्मेश्वरीदास
प्रेजीडेन्ट, आर्य पुत्री पाठशाला
गाँव—बच्छोके
तहसील—फूड़ड़कलां
जिला—शेखूपुरा

लीलारूप

अब तो लीलारूप के नाम से भी मेजर आनन्द को नफरत हो गई है। हाँ, एक वह समय भी था जब लीलारूप का नाम सुनते ही मेजर आनन्द की रगों में नया लहू नाचने लगता था। जैसे लीलारूप का नाम उनकी मां ने लोरियों में गा-गाकर अमृत की तरह उसके जीवन-कटोरी में घोल दिया हो। लीलारूप—सौ नामों का एक नाम! जैसे एक साथ सौ-सौ घुंघरू छनक जायँ, एक साथ सौ-सौ पायलें बज उठें—ऐसा था लीलारूप का नाम। मेजर आनन्द को खूब याद था कि उसने सपनों का महल बनाया था। लीलारूप के नाच-गान इस महल के ईंट-पत्थर थे। उन दिनों सचमुच उसका यही खयाल था कि कुछ ही वर्षों में लीलारूप का नाम बच्चे-बच्चे की जबान पर होगा, हर कहीं लीलारूप का सिक्का चलेगा। पर लीलारूप का इतना अच्छा भाग्य कहां था? मेजर आनन्द ने अपने हाथों से उसका गला घोंट डाला। सचमुच ऐसा करने के लिये वह मजबूर ही तो हो गया था।

थकी-थकी आँखों को दायें हाथ की अँगलियों से मसलते

हुए मेजर आनन्द को क्रोध आने लगता है। मैं लाख कहता हूँ कि भले आदमी, थोड़ा सो लो। वह कहता है, सोने से कौन-सा स्वर्ग हाथ आ जायगा ? उसका शरीर अकड़ने लगता है। सब से अधिक उसका दिल अकड़ता है, जैसे वह किसी पुस्तक का पुश्ता हो और जिल्दसाज ने उस पर सरेस लगाकर उसे सुखा दिया हो। अब यह सरेस उतरने का नहीं। दिल यों ही अकड़ा रहेगा। मैं कहता हूँ—भले आदमी, लीलारूप को सम्हाल कर रखा होता। अफसोस, उस समय मैं न हुआ। मैं तुम्हारे पास होता तो प्राणों की बाजी लगा देता। मेजर आनन्द के माथे पर त्योरी और भी फैलने लगती है। भई वाह, मैं कहता हूँ, लीलारूप के कहकहे तो आज भी तुम्हारी रूह पर छाये हुए होंगे। मेजर आनन्द और भी सिकुड़ने लगता है, जैसे वह लीलारूप को अपने जीवन के सब से बड़े भेद के रूप में छुपाकर रखने का फैसला कर चुका हो।

सोचता हूँ, लीलारूप की नर्त्तकियों को कोमल गुदगुदाती चुहलें आज भी मेजर आनन्द की कल्पना को छू-छू जाती होंगी। उनके पाउडर-सुर्खी से लैस चेहरे बिजली के प्रकाश में कितने सुन्दर और मोहक लगते होंगे। जैसे एक-एक नर्त्तकी नई-नवेली दुलहन हो। मैं पूछना चाहता हूँ—कहो मेजर आनन्द, क्या इतना भी नहीं बताओगे कि उन नर्त्तकियों में सबसे सुन्दर नर्त्तकी कौन-सी थी ? क्या उसकी पायल की झंकार तुम्हारी रूह में रेंग कर हजारों नब्जों की तरह फड़फड़ाती नहीं ?

मेजर आनन्द के व्यक्तित्व का मुझ पर बहुत दिनों से रोब है। सोचता हूँ, वह लीलारूप की कहानी को कब तक दुनिया से छुपाकर रखेगा ? मैं कहता हूँ—मेजर आनन्द, यह ठीक है कि बग्घी के घोड़े आगे बढ़ रहे हैं, पर कभी-कभी जब घोड़े आगे बढ़ने से इन्कार कर देते हैं और चाबुक खाने पर भी बजाय

आगे बढ़ने के उलटे कदमों चलने लगते हैं या एकदम अड़ जाते हैं और अगली टांगें उठाकर पिछली टांगों पर खड़े हो जाते हैं, उस समय कहानी को मजबूर होकर पीछे की ओर देखना पड़ता है।

"हां हां", मेजर आनन्द कह उठाता है, "पर ऐसे अवसर सदा तो नहीं आते।"

"तो आसाम की पूरी कहानी क्यों नहीं सुना डालते?" यह कहते मैं जरा भी तो नहीं झिझकता।

"ऊँह! आसाम की कहानी सुनाने का यह कौन-सा मौसम है?"

"अच्छा, मत सुनाओ।"

"आराम से सुनायेंगे कभी आसाम की पूरी कहानी। ऐसी भी क्या जल्दी है।"

बात इससे आगे नहीं बढ़ने पाती। जाने वह मौसम कब आयेगा जब मेजर आनन्द अपने मुँह से आसाम की पूरी कहानी सुनायेगा। बहुत से लेखक उन दिनों उसी मूल्य पर बिक गये थे जिस पर मेजर आनन्द ने बिक जाना स्वीकार कर लिया था। पहले कैप्टन, फिर मेजर। समय-समय की बात है। आनन्द को यह तरकीब सूझ गई। मैं मुंह फेर कर अपनी तंग-सामग्री से चिपटा रहा, नहीं तो मैं भी आसाम के मोर्चे पर गया होता और उन्नति करते-करते मेजर आनन्द से भी आगे निकल गया होता।

मेजर आनन्द का रंग न गोरा है, न सांवला। गेहूँ और जौ के रंग एक साथ उभरते हैं। शरीर कुछ भारी है। पर सबसे ज्यादा रोब उनके कद का ही समझना चाहिए। इधर मैं भी तो उससे कुछ कम ऊँचा नहीं। वह तो खैर आसाम में पहली बार गया, मैं तो वर्षों पहले पूरे आसाम की धरती को अपने पैरों से

नाप चुका था। शायद इसीलिए आसाम का जिक्र आते ही मेजर आनन्द अर्थभरी नजरों से मेरी ओर देखने लगता है।

"आसाम का प्राचीन नाम है कामरूप।" मैं मानो चाक से काले बोर्ड पर लिखने के अन्दाज में कह उठता हूँ।

"बहुत ठीक। पर कामरूप का अपना शानदार इतिहास है," मेजर आनन्द भी किसी हेडमास्टर की तरह कहता चला जाता है, "इसे केवल जादू और टोने-टोटके का देश मत समझिए। इसी आसाम यानी कामरूप में मणिपुर है, जहां की वीरांगना राजकुमारी चित्रांगदा ने अर्जुन से विवाह किया था। रवीन्द्रनाथ नाथ ठाकुर ने चित्रांगदा की कहानी को अपने संगीतरूपक में अंकित किया है। मणिपुरी नृत्य की भी सबसे पहले रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ही प्रशंसा की थी। फिर उदयशंकर ने मणिपुरी नृत्य को दुनिया भर में विख्यात् कर दिया। हमारे लीलारूप में मणिपुरी नृत्य को विशेष स्थान दिया गया था।"

लीलारूप और मणिपुरी नृत्य—एक साथ सौ-सौ घुँघरू बज उठते हैं। पर मेजर आनन्द आगे नहीं बढ़ता, जैसे ताले को खोलकर फिर से बन्द कर दिया जाय। अरे भई, चुप क्यों हो गये? लीलारूप का प्रकाश क्या इतना अधिक था कि आज उसके खयाल ही से तुम्हारी आंखें चौंधिया जाती हैं?

"ब्रह्मपुत्र की लहरों ने क्या सन्देश दिया था?" मैं बढ़ावा देता हूँ।

"ब्रह्मपुत्र की लहरें आज भी मेरी कल्पना को छू-छू जाती हैं।"

"क्या कहती हैं ब्रह्मपुत्र की ये लहरें?"

"कहती हैं, तुम आये और चले गये और मेरे लीलारूप को भी साथ लेते गये।"

जैसे टिकी हुई रात में कोई बांसुरी पर पहाड़ी धुन बजा रहा हो और पास से कोई घुँघरू अलग छनक उठे। इसे मैं

लीलारूप का जादू समझता हूँ जिसे मेजर आनन्द जहाँ तक हो सके छुपाकर रखना पसन्द करता है। पर लीलारूप का नाम उसकी जबान पर आ ही जाता है।

आसाम का जिक्र आते ही मेजर आनन्द के चेहरे की रेखाएँ गहरी होने लगती हैं। उसके चेहरे पर बेचैनी और परेशानी झलकती है। ऐसा मालूम होता है कि आसाम ने उसके हृदय और मस्तिष्क को एक चक्कर दे दिया हो।

मैं उसकी गोल-गोल गहरी चमकीली आँखों की झीलों में लीलारूप का प्रतिबिम्ब देखने का यत्न किया करता हूँ। घनी भौंहों के नीचे से अपनी पलकों को उठाकर वह कुछ इस अन्दाज से दायें हाथ की मुट्ठी भींच कर अपनी आगे बढ़ी हुई ठोड़ी के समीप लाता है जिससे झट यह खयाल आने लगता है कि आसाम के मोर्चे पर मेजर आनन्द ने थोड़ी-बहुत वीरता तो अवश्य दिखाई होगी। पर फिर जब लीलारूप का ध्यान आ जाता है तो सोचता हूं कि मणिपुरी नृत्य में उन्हें उस नृत्य की झलक नजर आ गई होगी जो उसकी आत्मा में रम चुका है, जिसमें वसन्त के फूल खिल उठते हैं, जिसमें रूप और यौवन अँगड़ाइयां लेते हैं।

"लीलारूप को तो आज भी जारी रहना चाहिए था," मैं कह उठता हूं।

"लीलारूप ही को क्यों ?" मेजर आनन्द तान तोड़ने के अन्दाज में कहता है, "और बहुत-सी चीजों को भी तो जारी रहना चाहिए था।"

"लीलारूप को जारी क्यों न रखा जा सका ?"

"कुछ ऐसी ही बात हो गई थी।"

"लीलारूप को जितनी दाद मिलनी चाहिए थी, उतनी शायद नहीं मिली होगी।"

"प्राय: जीवन में ऐसा ही होता है।"

"तो लीलारूप को बन्द करते समय आपको अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी ?"

"यही समझ लीजिए।"

"पराजय की स्वीकृति में वेदना की अभिव्यक्ति को तुमने कैसे छुपाये रखा ?"

"अब इसके बारे में क्या कहा जाय ?"

"जैसे कोई जलते दिये को फूँक मार कर बुझा दे, ऐसे ही तुमने लीलारूप को बन्द कर दिया। इस भूल के लिए तुम्हें कभी क्षमा नहीं किया जा सकता ?"

"जब जीवन में बेपनाह खोखलापन हो, कोई लीलारूप कैसे जीवित रह सकता है।"

"पर यदि हमें जीवित रहते हुए जीवन का कोई अर्थ प्रस्तुत करना हो, तो लीलारूप आवश्यक है—लीलारूप, जो जीवन को धुँधली और व्यर्थ की समस्याओं की दलदल में गिरने से बचाये।"

"पर दुनिया है कि किसी लीलारूप की भी रिआयत नहीं करती।"

"आखिर दुनिया के सम्मुख तो अपनी ही मसलहत रहती है न।"

"लीलारूप को बन्द करने में दुनिया को क्या मसलहत सूझी होगी ?"

इसके उत्तर में मेजर आनन्द खामोश रहता है। सोचता हूं। ऐसी भी क्या खामोशी कि जिसमें इन्सान डूबता चला जाय। आसाम जाने से पहले भी मेजर आनन्द बहुत कम बातचीत करता था। सामने से आप पांच बातें कह जायँगे और पांच बातों के उत्तर में उनकी यही कोशिश रहेगी कि उनकी एक ही

है, मैंने लीलारूप के शानदार भविष्य की कल्पना प्रस्तुत की थी। मैंने यह भी लिखा था कि लीलारूप के सुन्दर, शानदार और भरपूर जीवन के नाच-गान कला के शिखरों को उजालते चले जायँगे। अन्धेरे से फूटती हुई स्वतन्त्रता की किरणें अब किसी के रोके रुकने की नहीं। जहां तक जीवन और कला की महानता का प्रश्न है लीलारूप देश के इतिहास में एक नये अध्याय की वृद्धि करेगा और आगे बढ़कर सबसे पहले लीलारूप ही स्वतन्त्रता का स्वागत करेगा। पर मेजर आनन्द ने मेरे पत्र का कोई उत्तर न दिया। उसकी इस खामोशी से मेरे मन को दोहरी चोट लगी।

स्वस्थ होते ही मैंने यात्रा की ठान ली। घरवालों ने बहुत कहा कि कुछ दिन आराम किया जाय। पर मुझे अब और रुकना स्वीकार नहीं था। देहरादून पहुँचते ही लेखकों की एक गोष्ठी में मेजर आनन्द से भेंट हो गई। गोष्ठी के पश्चात् सड़क पर खड़े-खड़े मैंने उससे शिकायत की कि उसने मेरे पत्र का उत्तर क्यों नहीं दिया था?

वह बोला, "यहां तो अपना भी होश नहीं था।"

"अब तो होश है न?" मैंने पूछ लिया।

"लीलारूप का कोई नाच-गान सुने बगैर ही तुमने लीलारूप की प्रशस्ति लिख भेजी। अब मैं इसका क्या उत्तर देता?"

"लीलारूप को यों खत्म कर दिया जायगा, इसका मुझे कभी सन्देह तक न हुआ था।"

"लीलारूप के पश्चात् भी संसार कायम है। खैर, छोड़िये लीलारूप की गाथा को।"

"लीलारूप कभी खत्म नहीं हो सकता, मेजर आनन्द!"

"वह कैसे?"

"वह ऐसे कि लीलारूप में वह इन्सान उजागर होता है, जो शताब्दियों का बोझ उठाये आगे चला जा रहा है, या यह कहिये

कि लीलारूप में एलोरा और अजन्ता की सुन्दरता अपने इतिहास के नये पृष्ठ ताजा लहू से लिखती है। लीलारूप अमिट है, अनादि है, अनन्त है। लीलारूप तो ऐसा है, जैसे एक जलबिन्दु सागर हो जाय।"

"तुम कविता कर रहे हो।"

उस दिन यह बात यहीं खत्म हो गई। मेजर आनन्द पर मुझे बहुत क्रोध आया। लेकिन मानवता और आशा की दीपशिखा की तरह लीलारूप बराबर मेरी कल्पना में टिमटिमा रहा था, जैसे इसमें तुन्द हवाओं से होड़ लेने की पूरी क्षमता हो। घुप अँधेरे में एक नन्हीं-सी किरण भी मंजिल का पथ-प्रदर्शन कर सकती है। लीलारूप को मैं एक ऐसी ही किरण समझता था।

मेजर आनन्द ने इतना भी तो न पूछा कि मैं कहां ठहरा हूँ। शायद उसे मेरा देहरादून पहुँच जाना बहुत नागवार गुजरा हो। मेजर आनन्द के चेहरे पर बेरुखी के साथ नफरत की रेखाएं भी उभरती चली गई थीं। मैंने अनुभव किया कि नफरत अपने साथ एक दर्द लाती है। यह दर्द बढ़ता ही चला गया। मुझे बहुत अफसोस हुआ। आखिर मुझे देहरादून आने की क्या आवश्यकता थी? भाड़ में जाय मेजर आनन्द और उसका लीलारूप। मेरी बला से! उस समय मुझे चारों ओर नफरत ही नफरत नज़र आ रही थी।

मुझे रात भर नींद नहीं आई। एक-दो बार आंख लगी भी तो बहुत भयानक स्वप्न बराबर परेशान करते रहे। मेजर आनन्द गहरी रात के भयानक सन्नाटे में एक भूत की तरह मेरा मुँह चिढ़ता रहा, जैसे कह रहा हो—तुमसे तुम्हारी राय किसने पूछी? वाह, बड़े आये लीलरूप के समर्थक!

सवेरा हुआ तो मेरी आंखों में थकन थी, मेरे दिल में क्रोध था। आखिर मेजर आनन्द को आसाम में दो-तीन वर्ष गुजारने

के कारण सुरखाब के पर तो नहीं लग गये। उस समय मुझे लीलारूप की कल्पना से भी नफरत हो गई थी।

सराय के कमरे में पक्के फर्श पर मैंने बिस्तर बिछा रखा था। मैं बार-बार करवट बदलता रहा और हर बार मेजर आनन्द को कोसता रहा।

एक घोर नफरत ने मेरी आत्मा की गहराइयों से वार करना शुरू कर दिया था। उस समय मेजर आनन्द सामने आ जाता तो मैं उसको खूब आड़े-हाथों लेता। तुमने आखिर अपने को क्या समझ रखा है? शायद तुम समझते हो कि तुम्हारे जन्म के पश्चात् माताओं ने बेटे जनने बन्द कर दिये! अरे तुम्हारे जैसे तो कई आये और चले गये। अरे मूर्खराज रेत पर चलनेवालों के पद-चिह्न तेज हवा के चलने के पश्चात् अपने-आप मिट जाते हैं। फिर तुमने कैसे समझ लिया कि तुम्हारा नाम इतिहास के पन्नों पर चढ़ गया और अब तुम्हें हमारे जैसे साधारण व्यक्तियों के साथ हमदर्दी जताने की कोई आवश्यकता नहीं?

दिन भर सराय के कमरे में पड़ा रहा। मेजर आनन्द ने जिस बेगानगी से मेरी आँखों में झांककर देखा था, उससे मेरी कल्पना के तार टूट गये थे। मैं तो यही कहने आया था कि यदि किसी तरह सम्भव हो तो लीलारूप को फिर खरीद लिया जाय। मैंने सामने की दीवार पर अपनी निगाहें गड़ा दीं। यों लगा जैसे वहां मेजर आनन्द का चेहरा उभर रहा हो। उस चेहरे पर भय की परछाइयां नजर आ रही थीं। जैसे उस चेहरे पर कोई फूल न खिल सकता हो। नफरत, भय और क्रोध की मिली-जुली भावना मेरे मन पर छा गई और मैं देर तक उस दीवार की ओर घूरता रहा।

मेजर आनन्द के जीवन की शानदार घटनाएं भी मेरी नजरों

में अराजकता की भूल-भुलैयाँ बनकर रह गई थीं। किस जगह उसका जन्म हुआ, इसका किसी को कुछ पता नहीं था। मैंने स्वयं उससे हजार बार इसका पता चलाने का प्रयत्न किया था। पर उसने यही कहा कि मातृभूमि तो बहुत विशाल है और तुम हो कि केवल धरती के उसी टुकड़े को मातृभूमि कहना चाहते हो जहां तुम्हारा जन्म हुआ। क्रांतिकारियों का साथ देने के अपराध में उसे जेल में जाना पड़ा था। जेल के अन्दर ही उसने लिखना शुरू किया। जब वह पहले-पहल जेल से छूट कर आया, तो कितने खामोश था। यों लगा जैसे उसकी आँखें जेल की पक्की और ऊँची दीवारों के पीछे और बाहर के जीवन के बीच एक पुल का रूप धारण कर चुकी हों। इसके पश्चात् जो कुछ भी उसने लिखा, उससे मैं प्रभावित होता चला गया। जहां तक आसाम के मोर्चे पर जाने का प्रश्न था, आरम्भ में मुझे यह बात बहुत अजीब मालूम हुई थी। यों लगा कि मेजर आनन्द मुट्ठी भर चांदी के सिक्कों के बदले में बिक गया। पर मुझे उसकी लेखनी से एक विशेष लगाव पैदा हो चुका था। मैंने किसी तरह अपने मन को राजी कर लिया और मैं सोचने लगा कि अब के आसाम से लौटकर मेजर आनन्द आसाम की बातें सुनायेगा। उस समय लीलारूप का तो कभी खयाल भी नहीं आया था। फिर लीलारूप का समाचार सुनते ही मैं उछल पड़ा था। पर अब तो वह बात खत्म हो चुकी थी। अब केवल नफरत रह गई थी और नफ़रत के बेपनाह भँवर में मेजर आनन्द का चेहरा गर्क हो रहा था।

कई बार खयाल आया कि क्यों न जरा हवा खाने के लिए सराय से बाहर निकल पड़ूं। समय चींटी की गति से रेंग रहा था। मैं बराबर यही सोचता रहा कि आखिर मुझे यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी।

उठकर मैं बाहर नल पर गया और आँखों पर ठण्डे पानी के छींटे मारकर फिर अन्दर आकर कपड़े बदले और कमरे को ताला लगाकर बाहर निकला।

सड़क पर तांगा खड़ा था। मैंने तांगेवाले को हाथ के इशारे से अपने पास बुलाया। वह झट तांगे को समीप ले आया। बोला—"कहां चलोगे, जी ?"

मैंने कहा—"दून-स्कूल के पास।"

तांग चला जा रहा था। मुझे खयाल आया कि मेजर आनन्द का जेल जाना भी एक ढोंग था। ऐसे लोग कब इस दुनिया में क्रांति ला सकते हैं ? अच्छा हुआ कि लीलारूप का किस्सा जल्द खत्म हो गया, नहीं तो मेजर आनन्द के हाथों न जाने लीलारूप की कितनी दुर्गति होती। जो व्यक्ति एक मित्र से सीधे मुँह बात नहीं कर सकता, वह बीस-पचीस नर्त्तकियों और दस-बारह दूसरे कलाकारों को कैसे एक माला में मनकों की तरह पिरो कर रख सकता है।

आखिर वह सड़क भी आ गई जिस पर वह कोठी थी, जिसमें श्रीमती गोपी भारद्वाज के यहां मेजर आनन्द ने अपने ठहरने का प्रबन्ध कर रखा था।

"बस, रुक जाओ।" मैंने फौजी अन्दाज में कहा।

तांगे से उतर कर मैंने दो रुपये का नोट तांगेवाले के हाथ में थमा दिया। इससे पहले कि मैं कहता कि एक रुपया वापस कर दो, ताँगेवाला कह उठा—"है तो कम, पर मैं इसे रख लेता हूँ, सरकार!"

'सरकार' का शब्द अच्छी-खासी चापलूसी ही तो था। मैंने सोचा, एक रुपये में यह शब्द महँगा नहीं।

दरबान की जबानी पता चला कि मेजर आनन्द इस समय अन्दर नहीं है। यह सुनकर मुझे एक तरह की शान्ति हुई।

चलो खामख्वाह की जिल्लत से छुट्टी मिली, व्यर्थ मुझे ही झुकना पड़ता। आनन्द तो मेजर है; अब वह जीवन भर मेजर रहेगा—वही अकड़, वही रोब!

दरबान शायद हैरान हो रहा था। मैंने कहा—"मुझे अब गोपी बहन से मिलना होगा। कहो, मेजर आनन्द के एक दोस्त आपसे मिलना चाहते हैं।"

दरबान अन्दर चला गया और लपक कर आया। बोला—"आपको बुलाया है।"

मैं धीमे कदमों से बरामदे तक पहुँचा। कमरे के अन्दर से आवाज आई—"आइये आइये!"

मैं सहमा-सहमा अन्दर चला गया। श्रीमती गोपी भारद्वाज ने स्वयं अपनी कुर्सी से उठ कर मुझे अपने समीप की कुर्सी पर बैठने को कहा। बोलीं—"कैसे कष्ट किया?"

मैंने कहा—"मुझे मेजर आनन्द से मिलना था।"

"वे तो बम्बई चले गये।"

"कब?"

"कल रात की गाड़ी से।"

"क्या पहले से उनका यह प्रोग्राम तय था?"

"नहीं तो। मैं तो बल्कि हैरान रह गई, जब वे आते ही बोले—दीदी, मुझे इसी गाड़ी से बम्बई जाना है।"

"कल सायंकाल ही मैं उनसे मिला था, लेखकों की एक गोष्ठी में। कल ही मैं सीधा अपने गाँव से यहाँ पहुँचा था।"

"तो आप उनके साथ यहाँ क्यों न चले आये?"

"मैं पहले ही एक जगह ठहरने का प्रबन्ध कर चुका था।"

"वहां कोई कष्ट हो तो आप यहां चले आइये।"

गोपी बहन का एक-एक बोल हमदर्दी से भरा हुआ था। मैंने कहा—"कभी फिर यहां आया तो जरूर सीधा आपके यहां

चला आऊँगा।"

"लेकिन अभी क्यों नहीं यहां चले आते ? आखिर ऐसी भी क्या बात है ? मैं अभी नौकर को भेजती हूँ। वह आपका सामान यहां ले आयेगा।"

मैंने सोचा, जरूर मेजर आनन्द ने गोपी बहन से मेरा जिक्र किया होगा, नहीं तो मुझे इतना आदर-सत्कार कैसे प्राप्त हो सकता था। मैंने लाख चाहा कि निवास-स्थान का भेद न खुलने पाये, पर आखिर मुझे बताना पड़ा कि मैं बाजार के पास-वाली सराय में ठहरा हूँ। उन्होंने उसी समय तांगा मँगवाया और कहा कि आप अभी सराय से सामान ले आइये। नौकर को भी उन्होंने मेरे साथ भेज दिया।

तांगे का घोड़ा बड़ा अड़ियल निकला। सराय तक जाने और वहां से लौटने में खामखाह पूरे दो घण्टे नष्ट हो गये।

वापस आने पर गोपी बहन ने पहले मेरे लिए अलग कमरे का प्रबन्ध कर दिया। बोलीं—"आराम से रहिये।"

मैंने कहा—"न जाने मेजर आनन्द को क्यों अचानक बम्बई जाना पड़ गया। अभी तो उनसे खुलकर दो बातें भी न हो पाई थीं।"

गोपी बहन ने नौकर को चाय लाने की आज्ञा दी और मुझसे कहा कि अभी ड्राइङ्ग रूम में आ जाइये।

ड्राइङ्ग-रूम काफी बड़ा था। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसकी दीवारों पर एक भी चित्र नजर नहीं आ रहा था। प्रकाश का आधुनिक प्रबन्ध किया गया था। बिजली का दूधिया सफेद प्रकाश मुझे बहुत पसन्द आया। ड्राइङ्ग-रूम की एक और विशेषता यह भी थी कि वहां रेडियो-सेट मौजूद नहीं था। सबसे पहले मैंने इसी पर गोपी बहन को दाद दी—

"यह रेडियो-सेट भी आजकल बहुत बड़ी मुसीबत बन गया है। जब देखो कोई न कोई गाना हो रहा है।"

"मैं इसे सुनना एकदम नापसन्द करती हूँ," गोपी बहन ने बड़े गम्भीर अन्दाज में कहा, "वैसे गाना मुझे पसन्द है।"

"हां, हां, गाना क्यों पसन्द न होगा?" मैंने कहा, "यदि आपको गाना पसन्द न होता, तो लीलारूप में आपने इतना रस कैसे लिया होता? पर मैं हैरान हूँ कि लीलारूप को खत्म क्यों कर दिया गया?"

"लीलारूप खत्म न होता तो हम खत्म हो जाते," गोपी बहन ने ठण्डी आह भर कर कहा, "मुझे पहले से मालूम होता तो मैं मेजर आनन्द को कभी इस झंझट में न पड़ने देती।"

"यह आप क्या कह रही हैं, बहनजी?" मैंने बढ़ावा दिया, "कला के बिना कोई देश कब आगे बढ़ा है?"

"लेकिन वह कला भी क्या जो कला के चाहनेवालों के लिए बवाल बन जाय!"

"क्यों लीलारूप में ऐसा क्या बवाल था?"

"तीस तो नर्त्तकियां थीं, न एक कम, न एक ज्यादा। पूरे बीस गाने-बजाने और नाचनेवाले और थे। ये हुए पचास आदमी। तीन ट्रकों के तीन ड्राइवर और तीन ही क्लीनर। तीन खाना पकानेवाले। तीन नौकर। कुल जमा बासठ आदमी थे। पूरा काफिला ही तो था। इस काफिले को ठहराने के लिये पूरी सराय दरकार थी।"

"तो उन्हें किसी सराय में ठहराया होगा?"

"उनके लिए तो यह कोठी ही सराय बनी। परिणाम यह हुआ कि वे लोग ज्यादा से ज्यादा स्थान पर कब्जा जमाते चले गये। हम सिकुड़ कर अन्दर ही अन्दर दबते गये। भैया, सच पूछो तो हमारे लिए तो लीलारूप एक बहुत बड़ी बीमारी की तरह

था।"

"ओहो !" मैंने जरा रुक कर हमदर्दी जताते हुए कहा "जब तो आपको बहुत कष्ट हुआ, बहनजी !"

गोपी बहन ने इसका कोई जवाब न दिया, जैसे उन्हें खयाल आ गया हो कि वे भावना के अतिरेक में लीलारूप के सम्बन्ध में इतनी बातें क्यों कह गईं।

मैंने कहा—"जहां तक मेजर आनन्द के साहित्यिक व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, उनका नाम हमारे साहित्य के इतिहास में बड़े गर्व से लिया जायगा। पहले उनकी कहानियों में गंगा की लहरें हमारे मन को गुदगुदाती थीं, अब ब्रह्मपुत्र की लहरें भी हमारे सामने थिरक उठती हैं। मेजर आनन्द ने धरती की धड़कनें सुनी हैं। उन्होंने किसानों और मजदूरों के सपनों में उठने-वाला तूफान देखा है। वे देश की पल-पल समीप आनेवाली स्वतन्त्रता का स्वागत करने की पूरी शक्ति रखते हैं।"

इसके उत्तर में गोपी बहन ने केवल इतना ही कहा—"मेजर आनन्द को खूब लिखना चाहिये। पर भैया, जीवन-डगर का भी तो हमारे लिखनेवालों को ध्यान रहना चाहिये।"

मैंने सोचा कि शायद गोपी बहन का संकेत मेजर आनन्द के असफल विवाह की ओर है। मैंने कहा—"बहनजी, मिसेज आनन्द आजकल...?"

गोपी बहन ने कहा—"इस बात को छोड़िये!"

मैं खामोश हो गया। थोड़ा रुक कर मैंने पूछ लिया—"क्या मेजर आनन्द फिर से विवाह करने जा रहे हैं?"

"उन्हें पत्नी नहीं मिल सकती," गोपी बहन ने हँस कर कहा, "मेरा खयाल है अब वे दोबारा भूल नहीं करेंगे।"

यह बात तो यहीं खत्म हो गई। ड्राइङ्ग-रूम में वही दूधिया-सफेद प्रकाश फैला हुआ था। चाय भी आ गई। गोपी बहन ने

स्वयं अपने हाथों से चाय बनाई और प्याली मेरी तरफ बढ़ाई।

मैंने कहा—"इतना तो बताइये, बहनजी, क्या स्थान की तंगी के कारण ही लीलारूप को खत्म कर दिया गया ?"

"नहीं तो," गोपी बहन ने बात को स्पष्ट करते हुए कहा, "बात और थी। लीलारूप असल में फौजियों का दिल खुश रखने के लिए एक तरह की नाटक-मण्डली थी, जिसका प्रबन्ध फौजी-विभाग की ओर से किया गया था। जब युद्ध बन्द हुआ तो मेजर आनन्द और उनके एक साथी ने उसे खरीद लिया।"

मैंने कहा—"यह तो स्पष्ट है कि बहुत सस्ते दामों लीलारूप को खरीद लिया होगा।"

गोपी बहन ने दायें हाथ की उंगलियों से सिर खुजाते हुए कहा—"पर नर्त्तकियों और बाकी गाने-बजानेवालों से यही तय हुआ था कि उन्हें बराबर वही वेतन मिलता रहेगा।"

"तो क्या लीलारूप की आमदनी से नर्त्तकियों आदि के वेतन भी पूरे न होते थे ?"

"यही तो कठिनाई थी। देखनेवाले आयें या न आयें लीलारूप का खेल शुरू होकर बीच में बन्द नहीं होता था। एक दिन की बात सुनाऊं। बस मैं और मेजर आनन्द दोनों खेल देखनेवाले थे। मैंने बहुत कहा—भैया, खेल बन्द करा दो, व्यर्थ नर्त्तकियों को नचाने से क्या लाभ ? पर मेजर आनन्द कब माननेवाले थे। पूरे नाच नाचे गये, पूरे गीत गाये गये। आमदनी कम, खर्च ज्यादा। बस कर्ज बढ़ता गया। हिस्सेदार ने एक दिन लीलारूप का दीवाला निकालने का प्रस्ताव रखा, पर मेजर आनन्द ने युद्ध की कमाई और अपनी पुस्तकों की रॉयल्टी का कुछ अंश देकर लीलारूप को अपने नाम करा लिया। पर भैया, लीलारूप ज्यादा दिन नहीं चल सकता था।

और थक-हार कर एक दिन मेजर आनन्द ने यह फैसला कर लिया कि लीलारूप को बन्द कर दिया जाय और लीलारूप का सब सामान नीलाम कर दिया जाय।"

मैंने कहा—"भाग्यशाली हैं वे जिन्होंने लीलारूप द्वारा प्रस्तुत किये जानेवाले नाच-गान देखे और सुने होंगे। मैं तो उन्हें देख नहीं सका।"

गोपी बहन ने पलट कर कहा—"आप भी उन्हें देखते और सुनते तो बहुत खुश होते। एक नृत्य तो सचमुच बड़ा अजीब था। उसकी पृष्ठभूमि में गानेवालों की 'हो-ओ-ओ-हो-ओ-ओ' ध्वनि बड़ी भयंकर प्रतीत होती थी, पर शीघ्र ही नाचनेवालों की मुखाकृति पर देवता का आशीर्वाद झलक उठता था, जैसे उन्हें अन्नदेवता ने विश्वास दिला दिया हो कि अब कभी अकाल नहीं पड़ेगा।"

मैंने उछल कर कहा—"वह नृत्य तो मुझे अवश्य देखना चाहिए था।"

गोपी बहन ने फिर कहा—"एक नृत्य में अलाव के गिर्द नाचने की प्रथा प्रदर्शित की जाती थी तो एक और नृत्य में फसलों को ऊंचा उठाने के संकेत प्रस्तुत किये जाते थे जो प्रायः आदिम जातियों के नृत्यों की विशेषता है। एक नृत्य में आरती-दीप जगमग-जगमग कर उठते थे।"

मैंने कहा—"तब तो लोक-कला का अच्छा प्रदर्शन रहता होगा। यही तो वह कला है जिसमें आज भी हमारे देश का हृदय धड़क रहा है। सच कहूँ, लीलारूप जैसा कलाकेन्द्र हर्गिज-हर्गिज बन्द नहीं होना चाहिए था। क्या लीलारूप के नाच-गान स्वयं मेजर आनन्द को भी पसन्द नहीं रहे थे?"

गोपी बहन फिर खामोश हो गई। मैंने फिर से बढ़ावा देते हुए कहा—"लीलारूप की नर्त्तकियां मेजर आनन्द का सम्मान

तो जरूर करती होंगी।"

"बल्कि हद से ज्यादा सम्मान करती थीं," गोपी बहन ने हँस कर कहा, "मेजर आनन्द जरा बाहर हुए कि कमरे नर्त्तकियों की चुहलों से गूंज उठे। जरा मेजर आनन्द अन्दर आये कि राजनर्त्तकी ने उद्घोषित किया—मेजर आनन्द! और सब नर्त्तकियां सीधी खड़ी हो जातीं तन कर फौजी अन्दाज में। और इसके उत्तर में मेजर आनन्द को भी हमेशा उनके सामने तन कर रहना पड़ता। युद्ध खत्म हो चुका था, पर नर्त्तकियां अभी तक मेजर आनन्द को फौजी सलाम करना जरूरी समझती थीं।"

"तो जिस दिन सब नर्त्तकियों को विदा किया होगा, उस दिन सारे दृश्य पर उदासी छा गई होगी—वैसी उदासी जो उस समय तपोवन में छाई थी जब शकुन्तला आश्रम से विदा हुई थी। कम से कम राजनर्त्तकी ने जरूर इधर-उधर घूर-घूर कर देखा होगा। शकुन्तला ने तो आश्रम से चलते समय कहा था कि उसकी अनुपस्थिति में हिरन और लतायें उदास हो जायँगी। शायद राजनर्त्तकी ने यह सोचा हो कि उसके जाते ही मेजर आनन्द पर उदासी छा जायगी।"

मैं सम्हल गया, क्योंकि ऐसी ही बातचीत के कारण मैंने मेजर आनन्द को नाराज कर दिया था।

गोपी बहन ने बताया कि पूरे डेढ़ मास तक लीलारूप का सामान बिकता रहा; बल्कि कुछ चीजें तो अभी तक पड़ी हैं और उन्हें सदा उनके खरीदारों की प्रतीक्षा रहती है। ये चीजें बिक जायँ तो जगह खाली हो जाय। लीलारूप का सामान कौड़ियों के मोल लुटाया गया—कम से कम गोपी बहन का यही खयाल था।

मैंने कहा—"आखिर मेजर आनन्द ने भी तो इस सामान का बहुत ज्यादा मूल्य नहीं दिया होगा।"

गोपी बहन ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। पर अब तो लीलारूप की कहानी मेरे रूबरू उजागर हो चुकी थी। मैंने कहा—"गोपी बहन, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद !"

नौकर ने आकर कहा—"खाना तैयार है।"

गोपी बहन ने कहा—"खाना अभी लगाओ दूसरे कमरे में।"

खाने से निवृत्त होकर मैं जल्द सो गया। और अगले सवेरे ही मैंने गोपी बहन से आज्ञा ली और अपने गांव के लिए चल पड़ा।

× × ×

बहुत दिनों बाद फिर मेजर आनन्द से भेंट हुई। अब तो वह अक्सर मिल जाता है। मुझे उस से नफरत नहीं। अक्सर लीलारूप का जिक्र छिड़ जाता है। वह जरा भी तो नहीं बदला। एक प्रश्न के उत्तर में दूसरा प्रश्न कर डालने का अन्दाज तो वह कभी छोड़ ही नहीं सकता। भले ही वह नाराज हो जाय, अब के उससे मुलाकात होने पर मैं जरूर कहूँगा—मेजर आनन्द, फिर से लीलारूप क्यों शुरू नहीं करते? जनता को ठीक डगर दिखाने के लिए लीलारूप बहुत काम की चीज हो सकता है।

मुझे विश्वास है कि इसके उत्तर में मेजर आनन्द खामोश खड़ा रहेगा जैसे अब कोई घुँघरू न बज सकता हो, जैसे सब की सब पायलें खामोश हो चुकी हों।

अन्नदेवता

"तब अन्नदेव ब्रह्मा के पास रहते थे। एक दिन ब्रह्मा ने कहा—"ओ भले देवता! धरती पर क्यों नहीं चले जाते?"

इन शब्दों के साथ चिन्तू ने अपनी प्रिय कहानी आरम्भ की। गोंडों को ऐसी बीसियों कहानियां याद हैं। वे जंगल के आदमी हैं और ठीक जंगली वृक्षों के समान उनकी जड़ें धरती में गहरी चली गई हैं। पर वे निर्धन हैं—भूख के चिर-अभ्यस्त। चिन्तू को देख कर मुझे ऐसा लगा कि वह भी एक देवता है जो धरती के निवासियों को अन्नदेव की कहानी सुनाने के लिए आ निकला है। घना अंधकार छाया हुआ था। अलाव के प्रकाश में बगल की पगडण्डी, किसी जवान गोंडिन की मांग प्रतीत होती थी। घूम-फिर कर मेरी नजर चिन्तू के झुर्रियोंवाले चेहरे पर जम जाती।

कहानी चलती रही—

"देवता धरती पर खड़ा था। पर वह बहुत ऊँचा था। बारह आदमी एक दूसरे के कन्धों पर खड़े होते तब जाकर उसके सिर को छू सकते।

"एक दिन ब्रह्मा ने सन्देश भेजा—यह तो बहुत कठिन है, भले देवता ! तुझे छोटा होना पड़ेगा। आदमी का आराम तो देखना होगा।

"देवता आधा रह गया, पर ब्रह्मा को सन्तोष न हुआ। आदमी की कठिनाई अब भी पूरी तरह दूर न हुई थी। उसने फिर सन्देश भेजा और देवता एक चौथाई रह गया। अब केवल तीन आदमी एक दूसरे के कन्धों पर खड़े होकर उसके सिर को छू सकते थे।

"फिर आदमी खुद बोला—तुम अब भी ऊंचे हो, मेरे देवता !

"अन्नदेव और भी छोटा हो गया। अब वह आदमी की छाती तक आने लगा। फिर जब वह कमर तक रह गया तो आदमी के आनन्द का पारावार न रहा। उसके शरीर से बालियां फूट रही थीं। मालूम होता था कि सोने का पेड़ खड़ा है। आदमी ने उसे झँझोड़ा और बालियां धरती पर आ गईं।"

मैंने सोचा कि और सब देवताओं के मन्दिर हैं पर अन्नदेव तो ठहरा खेतों का रक्षक। वह खुले खेतों में रहता है जहां हर साल धान उगता है, दानों में दूध भरता है—मां होनेवाली युवती के स्तनों के समान।

हल्दी बोली—"अब तो देवता धरती के बीचो-बीच कहीं पाताल की ओर चला गया है।"

चिन्तू ने फटी-फटी आंखों से अपनी पत्नी की ओर देखा। ऐसा भयानक काल उसने अपनी जिन्दगी में सर्वप्रथम देखा था। धरती इस प्रकार बंजर हो गई थी जैसे स्त्री बांझ हो जाय या किसी नन्हें की मां की छाती सूख जाय।

हल्दी फिर बोली—"और देवताओं के समान अन्नदेव भी बहरा हो गया है।"

चिन्तू ने पूछा—"पर अन्नदेव क्यों बहरा होगया ?"

"यह मैं मूढ़ क्या जानूँ ? पर बहरा तो वह हो ही गया है।"

प्रतिवर्ष हल्दी अन्नदेव की मन्नत मानती थी। एक हल्दी पर ही बस नहीं, प्रत्येक गोंड स्त्री यह मन्नत मानना आवश्यक समझती है। पर इस वर्ष देवता ने एक न सुनी। किस बात ने देवता ने क्रुद्ध कर दिया है ? क्रोध तो और देवताओं को भी आता है, पर अन्नदेव को तो क्रोध न करना चाहिये।

हल्दी की गोद में तीन मास का बच्चा था। मैंने उसे अपनी गोद में ले लिया। उसका रंग अपने पिता से कम साँवला था। उसे देख कर मुझे ताजे पहाड़ी शहद का रंग याद आ रहा था।

हल्दी बोली—"हाय, अन्नदेव ने मेरी कोख हरी की और वह भी भूख में और लाचारी में।"

बच्चा मुस्कराता तो हल्दी को यह विचार आता कि देवता उसकी आंखों में अपनी मुस्कान डाल रहा है। पर इसका मतलब ? देवता मजाक तो नहीं करता ? फिर उसके हृदय में क्रोध भड़क उठता। देवता आदमी को भूखों भी मारता है और मजाक उड़ाकर उसका दिल भी जलाता है।

चिन्तू बोला—"सच जानो तो अब मुझे अन्नदेव पर विश्वास ही नहीं रहा। और उसकी कहानी जो मैं आज के समान सौ-सौ बार सुना चुका हूँ अब मुझे निरी गप मालूम होती है।"

हल्दी यह न जानती थी कि चिन्तू का व्यंग्य बहुत सीमा तक ऊपरी है। यह तो वह समझने लगी थी कि देवता रोज-रोज के पाप-नाटक से क्रुद्ध हो गया है।

"अन्नदेव को नहीं मानते, पर भगवान् को तो मानोगे।"

"मेरा दिल तो तेरे भगवान् को भी नहीं मानता। मरदूद भगवान्। कहाँ है उसका मेघराज ? और कहाँ सो रहा

है खुद तेरा भगवान। एक बूँद भी तो नहीं बरसती !"

"देवता से डरना चाहिये और भगवान् से भी।"

चिन्तू ने सम्हलकर जवाब दिया—"जरूर डरना चाहिये, हा हा ही ही...और अब तक हम डरते ही रहे !"

"अब आये न सीधे रास्ते पर। जब मैं छोटी थी, माँ ने कहा था—देवता के क्रोध से सदा बचियो !"

"अरी कहा तो मेरी माँ ने भी कुछ ऐसा ही था। पर कब तक लगा रहेगा यह डर, हल्दी ?"

"देवता फिर प्रसन्न होगा और फिर लहरायेगा वही प्यारा-प्यारा धान।"

"अकाल में उत्पन्न हुए बच्चे को देखकर मैं सोचने लगा—इतना बड़ा पाप क्या होगा। इतना बड़ा देवता भी आदमी को क्षमा नहीं कर सकता।"

अकाल ने हल्दी की सारी सुन्दरता छीन ली थी। चिन्तू भी अब अपने जीवन के वसन्त को भूल रहा था। वृक्ष अब भी खड़ा था, पर टहनियाँ पुरानी हो गई थीं और पुरानी कोंपलें नजर नहीं आती थीं। हल्दी ने मुझे बताया कि उसकी चुलबुलाहट और उसके हँस-हँसकर बातें करने के अन्दाज ने ही चिन्तू को उसकी ओर आकर्षित किया था। उस समय वह युवती थी। एक मस्त हिरनी। उसकी नाक मोटी थी और नथने भी कम चौड़े न थे। जब वह उछलती-कूदती एक खेत से दूसरे खेत में निकल गई और चिन्तू ने उसे देखा तो उसके दिल में भी एक हिरन जाग उठा। वह भी दौड़ने लगा। एक दिन वह उसके पीछे भाग निकला तो वह पीपल के नीचे खड़ी हो गई। खेतों में धान लहलहा रहा था—स्नेह के समान जो दिल में उगता है। पहले वह कुछ-कुछ डरी फिर वह मुस्कराने लगी। जब चिन्तू ने अपनी अँगुलियों से

उसके केश सुलझाने शुरू किये और व्याह की बात छेड़ दी तो हल्दी ने सहमी हुई आवाज से कहा था—अन्नदेव हमें देख रहा है। पहले उनका ध्यान कर लो, फिर व्याह का नाम लो। हल्दी का विचार था कि देवता धान के पौदों में छिपा बैठा है और उनका प्यार उन्होंने देख लिया है। जब चिन्तू ने रेशम के कीड़ों का गीत गाया था तो हल्दी ने यह अनुभव किया कि चिन्तू भी ऐसा ही एक कीड़ा है। यह और बात है कि कीड़े व्याह नहीं करते, केवल प्यार करते हैं। हल्दी ने अन्नदेव की सौगन्द खाकर अपनी सचाई का विश्वास दिलाया था और चिन्तू ने कहा था—तुम जरूर बोल की सच्ची रहोगी, हल्दी! अन्नदेव की सौगन्ध बहुत बड़ी सौगन्ध होती है।

हल्दी का बच्चा मेरी गोद में रोने लगा। उसे लेते हुए उसने सहमी नजर से अपने पति की ओर देखा। बोली—"यह अकाल कब जायगा ?"

"जब हम मर जायँगे और न जाने यह तब भी न जाय।"

"धान के समान कुतकी और कोदों पानी नहीं माँगते। ये भी न उगे होते तो हम कभी के भूख से मर गये होते। उन्होंने हमारी लाज रख ली—हमारी भी, हमारे देवता की भी।"

"देवता का बस चलता तो उन्हें भी उगने से रोक देता—पापी देवता!"

"ऐसा बोल न बोलो, पाप होगा।"

"मैं कब कहता हूँ पाप न हो, सौ बार हो।"

"न नै, पाप से डरो और देवता के क्रोध से भी।"

मैंने बीच-बचाव करते हुए कहा—"दोष तो सब आदमी का है। देवता तो सदा निर्दोष होता है।"

रात उदास स्त्री की तरह पड़ी थी। दूर से किसी खूनी दरिन्दे की दहाड़ गूँज उठी। चिन्तू बोला "इन भूखे शेरों और

चीतों को अन्नदेव मिल जाय तो वे उसे कच्चा ही खा जायँ।

: २ :

बैसाखू के घर रुपये आये तो हल्दी उसे बधाई देने आई—"विपद में पच्चीस भी पाँच सौ हैं। रामू सदा सुखी रहे।"

बैसाखू ने कहा—"अन्नदेव से तो रामू ही अच्छा निकला।"

चिन्तू बोला—"छोड़ो ससुरे अन्नदेव की बात—अन्नदेव अन्नदेव।"

हल्दी ने अपने पति को सिर से पैरों तक देखा। इस व्यंग्य से उसे चिढ़ थी। देवता कितना ही बुरा हो जाय, आदमी को तो अपना दिल ठीक रखना चाहिये, अपना दिल सम्हालना चाहिये।

क्रोध में जली-भुनी हल्दी अपनी झोंपड़ी की ओर चल दी। बैसाखू ने फिर कहकहा लगाया—वाह भई वाह, राँड अब भी अन्नदेव का पीछा नहीं छोड़ती।"

चिन्तू बोला—"जपने दो उसे अन्नदेव की माला। हम तो कभी न मानें ऐसे पापी देवता को।"

"तू सच कहता है, चिन्तू! देवता पापी हो गया है।"

रामू बम्बई में था। चिन्तू सोचने लगा—"काश उसका भी कोई भाई वहां होता और पच्चीस नहीं, पांच ही भेजदेता।

बैसाखू ने पोस्टमैन को एक दुअन्नी दे दी थी। पर उसे इस बात का अफ़सोस ही रहा। बार-बार वह अपनी नगदी गिनता और हर बार देखता कि उसके पास चौबीस रुपये चौदह आने हैं, पच्चीस रुपये नहीं।

झोंपड़ी में वापस आने पर चिन्तू ने हल्दी को बेहोश पाया। उसने उसे झँझोड़ा—"रसोई की भी फिकर है। अब

सोओ नहीं हल्दी, दोपहर ढल गई ।"

उस समय यदि स्वयं अन्नदेव भी उसे झँझोड़ता तो होश में आने के लिए उसे कुछ देर तो अवश्य लगती ।

थोड़ी देर बाद हल्दी ने अपने सिरहाने बैठे पति की ओर घूरकर देखा । चिन्तू बोला—"आग जलाओ, हल्दी ! देखती नहीं हो, भूख से जान निकली जा रही है ।"

"पकाऊँ अपना सिर ?"

चिन्तू ने डरते-डरते सात आने हल्दी की हथेली पर रख दिये और उसके मुख की ओर देखकर बोला—"ये बैसाखू ने दिये हैं हल्दो, और मैं सच कहता हूँ मैंने उससे मांगे न थे ।"

हल्दी सन्देह-भरी दृष्टि से चिन्तू की ओर देखने लगी । क्या निर्धनता में आदमी इतना गिर जाता है ? पर चिन्तू के चेहरे से स्पष्ट पता चलता था कि उसने मांगने का जलील काम न किया था और फिर जब एक-एक करके सब पैसे गिने तो उसकी आंखें डबडबा आईं—चार दिन दाल-भात का खर्च और चल जायगा ।

"धन्यवाद है अन्नदेव का, लाख-लाख धन्यवाद है ।"

"अन्नदेव का या बैसाखू का ?"

"अन्नदेव का जिसने बैसाखू भाई के दिल में यह प्रेमभाव उत्पन्न किया ।"

चिन्तू का चेहरा देख कर हल्दी को सूखे पत्ते का ध्यान आया जो टहनी से लगा रहना चाहता है । दूर एक बदली की ओर देखती हुई बोली—"थोड़ी बूँदा-बाँदी ही हो जाय—अनाथ छोकरीके आँसुओं के समान ।"

पर तेज हवा बदली को उड़ा ले गई और धरती वर्षा के लिए बराबर तरसती रही । काल ने जीवन का सारा रस नष्ट कर दिया था । ऐसा लगता था कि धरतो रो देगी । पर आंसुओं से सूखे धानों

को पानी नहीं मिलता। अन्नदेव को यह शरारत कैसे सूझी। मान लिया कि वह स्वयं किसी कारण किसानों पर रुष्ट हो गया है। पर बादलों का तो किसानों ने कुछ नहीं बिगाड़ा था। वे क्यों नहीं घिर आते? क्यों नहीं बरसते। काश कि वे देवता का पक्ष न लें।

: ३ :

चार एक छोटा-सा गांव है।

उस दिन यहां दो-तीन सौ गोंड जमा हुए। फडके साहब और मुंशीजी धान बांट रहे थे। अपने हिस्से का धान पाकर हर कोई देवता की जय मनाता—अन्नदेव की जय हो!

चिन्तू गांव की पंचायत का दायाँ हाथ था। धान बांटने में वह सहायता कर रहा था। लोग उसकी ओर एहसान-भरी नजर से देखते और उसे लगता कि वह भी एक आवश्यक आदमी है। पर लोग देवता की जयजयकार क्यों मनाते हैं? कहां है वह मरदूद अन्नदेव?......वह स्वयं भी शायद एक देवता है......और शायद अन्नदेव से कहीं बढ़कर...

हल्दी ने सोचा—शायद यह धान अन्नदेव ने भेजा है। उसे दुखियारे गोंडों का ध्यान अवश्य है। पर जब उसने फडके साहब और मुंशीजी को हलवा उड़ाते देखा तो वह किसी गहरे चिन्तन में डूब गई। पहले तो उसके जी में आया कि हलवे का विचार अब आगे न बढ़े, पर यह विचार बादल के समान कल्पना पर फैलता चला गया।

अकाल-सभा से मिला हुआ धान कितने दिन चलता। चिन्तू के चेहरे पर मृत्यु की धुँधली परछाइयाँ नजर आती थीं। पर वह देवता से न डरता था। कभी-कभी घुटनों के बल बैठा घंटों अचेतन अवस्था में देवता को गालियां दिया करता। मैंने समझा कि वह पागल हो चला है। दो-चार बार मैंने उसे रोका भी, पर

यह मेरे बस की बात न थी। वह देवता को अपने दिल से निकाल देना चाहता था। पर देवता की जड़ें उसके हृदय में गहरी चली गई थीं।

चिन्तू की गालियां सुनकर लोगों को एक विशेष प्रकार का आनन्द आता। वे अनुभव करते कि उनका प्रतिकार लिया जा रहा है जो बहुत आवश्यक है। अन्नदेव में यदि थोड़ी भी शक्ति है तो चिन्तू को मार डालेगा या फिर पहले के समान ठीक होकर उसका मित्र हो जायगा। गोंडों को एक देवता की इतनी आवश्यकता नहीं, जितनी एक मित्र की—वह देवता क्या जो घर का आदमी न बन जाय।

एक दिन चिन्तू बहुत सवेरे उठ बैठा और बोला—"देवता अब धनवानों का हो गया है। अन्यायी!...पापी देवता! अरी मैं तो न मानूं ऐसे नीच देवता को।"

"पर नहीं, देवता तो सब का है।"

"सब का है?"

"अरी पगली! यह सब ज्ञान झूठा है।"

"पर देवता तो झूठा नहीं।"

"तो क्या वह बहुत सच्चा है?"

"सच्चा है तो बरखा क्यों नहीं होती।"

"देवता को बुरा कहने से दोष लगता है।"

"हजार बार लगे...धूर्त देवता! ले सुन लिया। वह अब हमारे खेतों में क्यों आयेगा? वह धनवानों की पूरी-कचौरी खाने लगा है। निर्धन गोंडों की अब उसे क्या परवाह है।"

चिन्तू की आलोचना हल्दी के मन में गम घोल रही थी। उसने झोंपड़ी की दीवार से टेक लगा ली और धीरे-धीरे अच्छे दिनों को याद करने लगी जब भूख का भयानक मुंह इतना न खुला था। वह खुशी फिर लौटेगी। देवता फिर खेतों में आयेगा

उसकी मुस्कान फिर नये दानों में दूध भर देगी। उस का मन डावांडोल था। देवता...पापी?...नहीं तो...नीच? नहीं तो। वह बाहर चला गया तो क्या हुआ? कभी तो उसे दया आयेगी ही।

हल्दी सम्हल कर बोली—"सच मानो! देवता फिर आयेगा यहां।"

चिन्तू का बोल और भी तीखा हो गया—"अरी अब बस भी कर, मेरी रांड! तेरा देवता कोई सांप थोड़ा है जो तेरी बीन सुनकर भागा चला आयेगा।"

उस दिन रामू बम्बई से लौट आया। उसे देखकर हल्दी की आंखों को एक नई ही भाषा मिल गई। बोली—"सुनाओ रामूभाई! बम्बई में तो तुमने देवता को देखा भी होगा।"

रामू खामोश रहा।

मेरा विचार था कि रामू ने बम्बई में मजदूर सभा के भाषण सुन रखे होंगे और वह साफ कह देगा कि देवता-वेवता कुछ नहीं होता। अन्न आदमी आप उपजाता है—अपने लहू से अपने पसीने से। आदमी यदि आदमी का लहू चूसना छोड़ दे तो आज ही संसार की काया पलट जाय। अकाल तो पहले से ही पड़ते आये हैं। बड़े-बड़े भयानक अकाल। पर अब पूंजीपति रोज-रोज किसानों और मजदूरों का लहू चूसते हैं और निर्धनों के लिये सदा ही अकाल पड़ा रहता है और यह अकाल देवता के छू-मन्तर से नहीं जायगा—इसके लिए सारे समाज को झंझोड़ने की आवश्यकता है।

हल्दी फिर बोली—"रामूभाई! चुप्पी क्यों साध ली तुमने? हमें कुछ बता दोगे तो तुम्हारी विद्या तो न घट जायेगी। बम्बई में तो बहुत बरखा होती होगी। पानी से भरी काली-ऊदी बद-लियां घिर आती होंगी...और बिजली चमकती होगी। इन

बदलियों में, रामू !...और वहां बम्बई में देवता को रत्ती भर दुख न होगा।

रामू के चेहरे पर मुस्कान आते ही झट गम्भीरता में बदल गई। वह बोला—"हां हल्दी! अन्नदेव अब बम्बई के महलों में रहता है...रुपयों में खेलता है...बम्बई में हल्दी, जहां तुमसे कहीं सुन्दर लुगाइयां रहती हैं..."

हल्दी कुछ न बोली। कदाचित् वह उन दिनों के सम्बन्ध में सोचने लगी जब रेल इधर आ निकली थी; और अन्नदेव पहली गाड़ी से बम्बई चला गया था।

आंसू की एक बूंद जो हल्दी की आंख में अटकी हुई थी उसके गाल पर टपक पड़ी। पर आकाश पर बादल जुट रहे थे। मैंने कहा—"आज अवश्य धरती पर पानी बरसेगा।"

हल्दी खामोशी से अपने बच्चे को थपकने लगी। कदाचित् वह सोच रही थी कि क्या हुआ यदि देवता को वहां सुन्दर लुगाइयां मिल जाती हैं! कभी तो उसे घर की याद सतायेगी ही और वह आप ही आप इधर चला आयेगा।

ब्रह्मचारी

पंचतरणी की वह रात मुझे कभी न भूलेगी। न पहले किसी पड़ाव पर सूरजकुमारी ने इतना शृंगार किया गया था, न यह गैस का लैम्प जलाया गया था। इस प्रकाश में सूरजकुमारी के विवाह के वस्त्र कितने भड़कीले नजर आते थे।

दोनों घोड़ेवालों को विशेष रूप से बुलाया गया था। एक का नाम था अज़ीज़ा और दूसरे का रफ़ी। जयचन्द का काश्मीरी क्लर्क जियालाल बहुत खुश नजर आता था। स्वयं जयचन्द भी दूल्हा बना बैठा था। रसोइये को न जाने इस महफिल में कुछ आकर्षण क्यों न अनुभव हुआ, काम से छुट्टी मिली तो यात्रा का बाजार देखने चला गया।

प्रेमनाथ से बिना कुछ कहे-सुने ही जब मैं श्रीनगर से पैदल ही पहलगांव के लिये चल दिया था तब किसे खबर थी कि इतने अच्छे खेमे में स्थान मिल जायगा। सूरजकुमारी ने मेरा भेद पा लिया था। उसने जयचन्द को बता दिया कि मैं घरवालों की रजामन्दी के बिना ही इधर चला आया हूँ। इस प्रकार उसने

अपने पति की सहानुभूति मेरे लिए और भी उभार दी।

जियालाल ने अज़ीज़ा से वह गीत गाने का अनुरोध किया जिसमें एक कन्या कहती है—बेदमुश्क की खुशबू मेरे मन में बस गई है। बावरे भौंरे! तू कहां जा सोया है ?

उसे यह गीत याद न था। उसने सोचा होगा कि वह युवती जिसके मनमें बेदमुश्क की खुशबू बस गई थी, सूरजकुमारी से कहीं अधिक सुन्दर होगी। यह और बात है कि काश्मीर की बेटी को अक्सर खूबसूरत लिबास नसीब नहीं होता।

स्वयं सूरजकुमारी न जाने क्या सोच रही थी। मुझे उसका वह रूप याद आ रहा था जब वह हरा दुपट्टा ओढ़े घोड़े पर सवार थी और चन्दनवाड़ी पार करके बर्फ के उस पुल पर उतर पड़ी थी जिसके नीचे से शेषनाग बह रहा था। तब वह जंगल की अप्सरा प्रतीत होती थी। रास्ते में जंगली फूल चुन कर चलते-चलते जियालाल ने एक गजरा तैयार कर लिया था। और वह मुस्कान मुझे कभी न भूलेगी जो कि जियालाल से वह गजरा लेते समय सूरजकुमारी की आंखों में मचल उठी थी।

मैंने कहा—"गीत तैयार करना बहुत कठिन तो नहीं। शब्दों को बांसुरी में से गुजार दो, गीत बन जायगा।"

सूरजकुमारी बोली—"मेरे पास तो किसी पर प्रभाव डालने वाले शब्द भी नहीं रह गये। हां, बासुरी मैंने सँभाल-कर रख छोड़ी है......कभी मुझे भी कविता और संगीत की धुन लगी थी।"

मैं खामोश हो गया और अपने मन में उससे यही कहा—घबरा नहीं, खामोश दुलहन! तेरे बोल तो बहुत सुरीले हैं...वे अवश्य किसी दिन फिर भी बांसुरी में से गुजरेंगे...और अपने गीतों में तू मुझे भूल तो न जायगी...

अज़ीज़ा ने लोचदार आवाज़ में गाना आरम्भ किया—

वन फूले अन्दवनन
च कनन गोव नालेंओन ?
लज फूले कोलसरन
वोथू नीरव खसवो
फुली योस्मन अन्दवनन
च कनन गोव नालेंओन ?

—'दूर जंगलों में फूल खिल गये। क्या मेरी बात तेरे कानों तक नहीं पहुँची? कोलसर जैसी झीलों में फूल खिल गये। उठो हम चरागाहों की ओर चढ़ेंगे। दूर जंगलों में चमेली के फूल खिल गये। क्या मेरी बात तेरे कानों तक नहीं पहुँची?'

जयचन्द काश्मीरी खूब समझता था। काश्मीर में ठेकेदारी करते उसे कई वर्ष हो गये थे। सूरजकुमारी ने क्यों इस भाषा में दिलचस्पी न ली थी, इस बात पर सबसे अधिक आश्चर्य मुझे उसी रात हुआ। जयचन्द बोला—"यह किसी कुंवारी का गीत है। उसने देखा कि वसन्त आ गया, चमेली के फूल भी खिल गये। और फिर शायद अचेतनरूप से उसने यह भी अनुभव किया कि वह खुद भी चमेली का एक फूल है!"

गीत का एक ही रेला अजीज़ा को मेरे समीप खींच लाया। सारे रास्ते में मैंने कभी उसे इतना खुश न देखा था। आदमी कितना छिपा रहता है। उसे जानने का मैंने अब तक यत्न भी तो न किया था।

रोज़-रोज़ की लम्बी यात्रा से हम बहुत थक गये थे। अब इस शराल में सब थकावट भूल गई। सूरजकुमारी का सुन्दर चेहरा सामने न होता तो अजीज़ा को वसन्त का गीत न याद आया होता।

सूरजकुमारी कह रही थी—"बाबूजी, मैंने सुना है कि इस वादी में बहनेवाली पांचों नदियों का पानी, जो इतना पास-पास

बहता है, एक दूसरी से कम या ज्यादा ठण्डा है।"

जयचन्द बोला—"शायद यह ठीक हो।"

मैं सोचने लगा कि सब पुरुष भी तो एक तबीयत के मालिक नहीं होते...स्त्रियां भी स्वभाव की दृष्टि से एक-सी नहीं होतीं.... वाह री प्रकृति, पंचतरणी की पांचों नदियों का पानी भी एक समान ठण्डा नहीं।

"पार्वती इन नदियों में बारी-बारी से स्नान किया करती थी, बाबूजी!"

"तुमसे किसने कहा?"

"जियालाल ने।"

जियालाल चौंक पड़ा। सूरजकुमारी ने विनोदमय हँसी हँसकर जयचन्द की ओर देखा, जैसे वह स्वयं भी एक पार्वती हो और अपने शिव को रिझाने का यत्न कर रही हो।

मैंने अजीज़ा से कोई दूसरा गीत गाने का अनुरोध किया। वह गा रहा था—

> वनि दमई आरवलन यार कुनि मे लखना?
> छोह लोगम मसवलन यार कुनि मे लखना?
> दमई स्यन्दज़लन यार कुनि मे लखना?

—'आरवल के फूलों में तुम्हें तलाश करूँगी। कहीं तुम मिलोगे नहीं, मेरे प्रियतम? मेरे बाल-बाल को अपने-से घृणा हो गई है। कहीं तुम मिलोगे नहीं, प्रियतम? सिन्ध नाले के पानियों पर तुम्हें तलाश करूँगी। कहीं तुम मिलोगे नहीं, प्रियतम?'

रफ़ी उस वृक्ष के समान था जिसे झँझोड़ने पर ऊँची टहनी पर लगा हुआ फल नीचे नहीं गिरता। उसने एक भी गीत न सुनाया। पर जियालाल काफी उछल पड़ा और बगैर रस्मी तकाजे के उसने गाना शुरू किया—

> चूरी यार चूलमताय तहीमा ड्यूठवून

तहीमा ड्यूठवून
दूरन मारन ग्राय लोलो, ग्राय लोलो
व्यथिवी विगन्याव रूबहाथ करवने
संगरमालन छाय लोलो, छाय लोलो !

—'मेरा प्रियतम चोरी-चोरी भाग गया। क्या तुमने उसे देखा है कहीं, देखा है कहीं ? कान की बालियाँ हिलाते हुए, हिलाते हुए, उठो परियो, हम रूब नाच नाचेंगे। पहाड़ियों की छाया में, छाया में !'

जियालाल मुस्करा रहा था। शायद खुद ही अपने गीत पर खुश हो रहा था। सूरजकुमारी की ओर ललचाई आंखों से देखना व्यर्थ न रहा। वह उसकी भाषा न समझती थी, दाद न दे सकती थी। पर उसे मुस्कराता देख वह भी मुस्कराने लगी।

सूरजकुमारी की मुस्कान में कितनी मोहिनी थी। वह कालिदास की किसी शृंगार-रस की कविता के समान थी जिसमें शब्द एक से अधिक अर्थ प्रस्तुत करते हैं। मेरी समझ में यही बात आई कि उसकी मुस्कान जयचन्द और जियालाल के लिए नहीं बल्कि मेरे लिए है।

पर मैं इस माया में फँसने के लिए तैयार न था। कच-देवयानी की पुरानी गाथा मेरी आंखों के आगे फिर गई—सूरजकुमारी शायद देवयानी थी और मैंने अनुभव किया कि मैं भी किसी कच से कम नहीं हूँ।

अतीत का कच स्वर्ग का वासी था, मैं इसी धरती का। यही अन्तर था। वह धरती पर एक ऋषि के आश्रम में अमर रहने की विद्या सीखने आया था और मैंने यात्रा के दिन काटने के लिए जयचन्द के खेमे में आश्रय पाया था। स्वर्ग से चलते समय कच ने यह वचन दिया था कि वह यह विद्या सीख कर वापस स्वर्ग में लौटना और वहां के वासियों को इसका लाभ

पहुँचाना कभी न भूलेगा। इसके लिए सबसे अधिक यही आवश्यक था कि वह ब्रह्मचारी का धर्मपालन करे। ऋषि किसी को यह विद्या आसानी से सिखाता न था। कितने ही युवक इनसे पहले भी आ चुके थे। हर कोई ऋषि के क्रोध द्वारा वहीं खतम हो गया। पर जब कच आया तो ऋषि की कन्या देवयानी उस पर मुग्ध हो गई। अपने पिता से अनुरोध करके उसे यह विद्या सिखाने पर राजी कर लिया। जब कच यह विद्या सीख चुका तो वह वापस जाने के लिये तैयार हो गया। देवयानी कहती है—देखियो, इस वेनुमती नदी को मत भूलियो। यह तो स्वयं प्रेम के समान बहती है!

कच उत्तर देता है—इसे मैं कभी न भूलूंगा...इसी के समीप जब मैं यहां पहुँचा था मैंने तुम्हें फूल चुनते देखा था और मैंने तुमसे कहा था—मेरे योग्य सेवा हो तो कहो।

देवयानी कहती है—हां, इसी प्रकार हमारा प्रेम आरम्भ हुआ था...अब तुम मेरे हो...स्त्री के हृदय का मूल्य पहचानो...प्रेम भी किसी विद्या से सस्ता नहीं...और अब सब के सब देवता और उनका भगवान अपनी सम्मिलित शक्ति से तुम्हें वापस न ले सकेंगे...मुझे फूल भेंट करने के विचार से बीसियों बार तुमने पुस्तक परे फेंक दी थी...अनगिनत बार मुझे वे गीत सुनाये थे जो सदा स्वर्ग में गाये जाते हैं। तुमने यह प्यार केवल इसीलिए तो नहीं अपनाया था कि यों मुझे खुश रख सको और आसानी से वह विद्या सीख लो जिसे मेरे पिताजी ने पहले किसी को सिखाना स्वीकार न किया था।

कच कहता है—मुझे क्षमा कर दे देवयानी!...स्वर्ग में तो मुझे अवश्य जाना है। फिर मैं तो ब्रह्मचारी हूँ।

देवयानी उत्तर देती है—ब्रह्मचारी!... तुम यहां आ निकले थे। धूप तेज थी। छाया देख कर यहां आ बैठे। फूल चुनकर

तुमने मेरे लिए हार बनाया था। अब स्वयं अपने हाथों से हार का धागा तोड़ रहे हो। देखो फूल गिरे जा रहे हैं...

कच कहता है—ब्रह्मचारी तो मैं हूँ ही। स्वर्ग में हर कोई मेरी प्रतीक्षा में होगा। वहां मुझे अवश्य जाना है...और यह तो प्रत्यक्ष है कि जहां तक मेरी आत्मा का सम्बन्ध है अब स्वर्ग में मुझे शान्ति प्राप्त न होगी।

मैंने सोचा कि एक लिहाज से मैं कच से कहीं अधिक उपयुक्त कारण प्रस्तुत कर सकता हूँ। मैं कह सकता हूँ—सूरजकुमारी! तेरी मुस्कान तेरे पति के लिये होनी चाहिये। देवयानी के समान तू किसी ऋषि की अविवाहिता कन्या थोड़े ही है।

सूरजकुमारी अँगड़ाई ले रही थी। उसके बालों की एक लट उसके गालों पर सरक आई थी। मुझे सम्बोधित करते हुए बोली—"बस, या अभी और...?"

मैंने पूरा भाव समझे बिना ही कह दिया—"बस, और नहीं।"

"और नहीं...खूब रही! मैं तो इधर की भाषा समझती नहीं। तुम्हारे लिये बाबूजी ने अजीज़ा को यहां बुलाया। अब थोड़े से गीत सुनकर ही तुम्हारी भूख मिट गई। तो यों ही गीतों की रट लगा रखी थी पहलगांव में।"

मैंने कहा—"नहीं, बीबीजी, आपको नींद आ रही है और शायद अजीज़ा भी सोना चाहता है।"

अजीज़ा कुछ न बोला और जयचन्द ने महफ़िल बर्खास्त कर दी। अजीज़ा और रफ़ी चले गये, और रसोइया जयचन्द और सूरजकुमारी के बिस्तर लगाकर हमारे पास आ बैठा।

सूरजकुमारी पूछ रही थी—"सुना है बाबूजी, गुफा में कबूतरों का जोड़ा भी दर्शन देता है।"

"सबेरे तुम खुद देख लोगी।"

"ये कबूतर कहां से आते हैं?"

"अब यह मैं क्या जानूं ?"

"एक सुनारिन ने बताया था कि ये कबूतर शिव और पार्वती के रूप हैं।"

"शायद स्त्रियों का वेद यही कहता है।"

रसोइया सो चुका था। सूरजकुमारी और जयचन्द भी सो गये। जियालाल बोला—"उफ़, कितनी सर्दी है।"

"कितनी सर्दी है! ब्रह्मचारी होकर भी यह सर्दी नहीं सह सकते। लज्जा की बात है।"

"ब्रह्मचारी तो मैं हूँ, पर मैं इस जलवायु का आदी नहीं हूँ।"

"ब्रह्मचारी को किसी भी ऋतु से डरना नहीं चाहिये।"

"तुम भी तो ब्रह्मचारी हो।" उसने ताना मारा।

"तो मैं कब डरता हूँ ?"

"तो क्या तुम खेमे के बाहर खुले आसमान के नीचे सो सकते हो ?"

यह बात मैंने जोश में आकर कह दी थी। मैंने अपनी मोटी कश्मीरी लोई उठाई और खेमे से बाहर निकल गया। जियालाल मेरे पीछे भागा। मैं रुककर खड़ा हो गया। चाँदनी छिटकी हुई थी। सन्नाटा था।

वह बोला—"मैंने तो हँसी में कह दिया था और तुम सच मान गये।"

"सच हो चाहे झूठ। मैं दिखा दूंगा कि ब्रह्मचारी डरता नहीं।"

"अच्छा तो खेमे के समीप ही सो जाओ।"

"मैं खेमे के समीप ही लोई में लिपट कर लेट गया। वह अन्दर से चटाई निकाल लाया। बोला—"इसे नीचे डाल लो। ऐसी तो कोई शर्त न थी कि नंगी धरती पर सोकर दिखाओगे।"

चटाई डालकर वह मेरे पैरों की ओर बैठ गया। बोला—

"अरे यार मुफ्त में क्यों जान गँवाते हो ?"

"ऊँह !"

मैंने कन्धे फरकाते हुए कहा—"मुझे किसी बात का खतरा नहीं है।"

"अच्छा, तो मैं ठेकेदार साहब को जगाता हूँ ?"—जियालाल बोला।

फिर जियालाल उस मुसलमान चरवाहे की कहानी सुनाने लगा जिसने एक बड़ा काम किया था। यात्री अमरनाथ का रास्ता भूल गये थे। उसने यह रास्ता ढूंढ़ निकाला था और इसके बदले में अब तक उसकी औलाद को चढ़ावे का एक माकूल हिस्सा मिलता आ रहा है।

मैंने शरारत के तौर पर कहा—"वह चरवाहा उस समय जरूर ब्रह्मचारी होगा।"

वह हँस पड़ा और अन्दर जाकर लेट रहा। मैं चांद और तारों की ओर देख रहा था। प्राचीन काल में बड़े-बड़े ऋषि इधर आते थे तो खेमों में थोड़े ही रहते थे। यों खुले आकाश-तले पड़े रहते होंगे। इस कड़ाके की सर्दी से वे डरते न थे।

कुछ देर के बाद तारे मेरी दृष्टि में कांपने लगे। चांद धुंध में लिपट गया। स्वप्निल पलकों ने आंखों को सी दिया और...

मैंने देखा कि जियालाल घोड़े पर सवार सूरजकुमारी को गजरा पेश कर रहा है और वह पेशावर की हरे दुपट्टे वाली सुन्दरी अजब अन्दाज से मुस्करा रही है। मैंने जियालाल को चेतावनी देते हुए कहा—"जियालाल ! तुम्हारा आदर्श नारी से कहीं ऊंचा है। नारी एक इल्यूज़न है—माया !"

जियालाल एक व्यंग भरी मुस्कान से मेरी ओर देखने लगा और बोला—"पर यह माया भी कितनी सुन्दर है। मुझे इस मृगतृष्णा के पीछे भटकने दो !"

अज़ीज़ा बेदमुश्क की टहनी लिये आ रहा था। मैंने झट उससे प्रश्न किया—"यह किसके लिए लाये हो, अज़ीज़ा ?"

"उस वसन्त की दुलहन के लिए जो खेमे में इस वक्त सपने देख रही है।" अज़ीज़ा ने नीम मदहोश आंखों से मेरी ओर देखते हुए कहा।

उस समय मुझे किसी सूरजकुमारी की आवाज सुनाई दी, जैसे वह गा रही हो—बेदमुश्क की खुशबू मेरे मन में बस गई है......दूर जंगलों में चमेली के फूल खिल गये। क्या मेरी आवाज तुम्हारे कानों तक नहीं पहुंची, मेरे प्रियतम ?

और जैसे कोई जयचन्द कह रहा हो—तुम्हारी आवाज़ मैंने सुन ली। उठो, हम चरागाहों की ओर चढ़ेंगे।

फिर सूरजकुमारी तितलियों के पीछे भागी। जयचन्द भी उसके साथ-साथ रहा। सूरजकुमारी को देखकर मुझे उस चीनी युवती का ध्यान आया जिसे तितलियों ने फूल समझ लिया था और टोलियां बनाकर उसके गिर्द जमा हो गई थीं......पर ये तितलियां तो सूरजकुमारी से भाग रही थीं और उनका पीछे करते उसका सांस चढ़ रहा था। जयचन्द को देख कर मुझे चीनी इतिहास के उस सम्राट् का ध्यान आया जिसने पिंजरों में सैंकड़ों तितलियां पाल रखी थीं। जब उसके बाग में सुन्दर युवतियां जमा होतीं तो वह आज्ञा देता कि पिंजरों के द्वार खोल दिये जायँ। ये तितलियां बला की सयानी थीं। वे सबसे सुन्दर युवती के गिर्द जमा हो जातीं और इस प्रकार यह सुन्दरी सम्राट की आंखों में जँच जाती...क्या इस जयचन्द ने भी तितलियों की सहायता से इस सूरजकुमारी को चुना था ? पर ये तितलियां तो न सूरजकुमारी की परवाह करती थीं न जयचन्द की...

दौड़ती-दौड़ती यह सूरजकुमारी एक चरवाहे के पास जा पहुंची। बोली—"बांसुरी फिर बजा लेना। पहले मेरे लिए तितली

पकड़ दो—वह सुन्दर तितली जो अभी अभी सामने फूल पर जा बैठी है।" शायद तितली के बजाय वह उस नौजवान चरवाहे को ही गिरफ्तार करना चाहती थी और फिर जब उसने पीछे मुड़कर देखा तो उसे जयचन्द नज़र न आया।

वह गा रही थी—कहीं तुम मिलोगे नहीं, मेरे प्रियतम? आरबल के फूलों में तुम्हारी तलाश करूँगी।

कहीं से कोई जियालाल आ निकला। बोला— तू नरगिस है—खुमार से भरपूर। तू लाज से गर्दन झुकाये हुए है...और वह सूरजकुमारी बोली—बावरे भौंरे! मैं तेरी बाट जोह रही थी।

जयचन्द को आता देखकर जियालाल भाग गया, नहीं तो वह बुरी तरह पिटता। जयचन्द बेतहाशा गालियां देने लगा। सूरजकुमारी सिर झुकाये खड़ी थी। पैर के अंगूठे से वह जमीन कुरेदती रही।

मैंने तय कर लिया कि अब और यह खेल न देखूंगा। अपनी लोई में सिमट कर लेट गया। सूरजकुमारी का विचार भी मेरे दिल में न उठे, बस यही मेरी कोशिश थी। पर सूरजकुमारी थी कि सामने से हटती ही न थी। मेरे पास आ बैठी और अर्थपूर्ण निगाहों से मेरी ओर देखने लगी। उसे अपने बिल्कुल समीप पाकर मैं बहुत घबराया और मैंने चिल्लाते हुए कहा—"नारी!—नारी माया है और फिर मैं तो एक ब्रह्मचारी हूँ।"

उसने मेरा सिर अपनी जांघ पर रख लिया। मैं घबरा कर उठ खड़ा हुआ और बोला—"न बाबा! मुझे पाप लगेगा।"

"और मुझे भी?"

"हां।"

"प्यार तो पाप नहीं।"

मैं चुप रहा। वह बोली—"अब याद आया। जियालाल से

गजरा लेकर मैंने उसे थोड़ी-सी मुस्कान दे दी थी। उस दिन से तुम कुछ तने-तने से रहते हो...तुम्हारे हाथ किस तरह ठण्डे यख़ हो रहे हैं, जानते हो ?"

"हो जाने दो ?"

"पैर नीले हो रहे हैं।"

"होने दो। तुम जाओ।"

वह मुझे सहलाती रही। उसकी बाहें कितनी सुखदायक थीं। उनमें कितनी गरमजोशी थी। वह मुझसे लिपट गई। मुझे भींचने लगी। मैं सम्भल न सका। शरीर हारता जाता था।

क्या सचमुच मैं वह दिया हूँ जिसका तेल कभी खत्म नहीं होता, जिसकी बाती कभी बुझती नहीं ? क्या नारी माया है ? सूरजकुमारी भी माया है ? उसकी बाहों की गरमजोशी, उसकी लम्बी-लम्बी पलकें और उसके उभरे हुए गाल—क्या यह सब माया है ? इस प्यार से भगवान रुष्ट होते हैं तो हो जायँ। यह बात थी तो ये सूरतें न बनाई होतीं, यह भावना न दी होती।

ऊपर तारे झिलमिला रहे थे। मेरे मनमें प्यार की भावना जाग रही थी। मैंने कहा—"अपने बिखरे हुए बाल ठीक कर लो।"

वह कुछ न बोली। मैं उठ बैठा। "सूरजकुमारी ! तुमने कितना कष्ट किया," मैंने कहा, "इस सर्दी में तुम यहां बैठी हो ? खेमे में चली जाओ।"

वह कुछ न बोली। मुझे यह अनुभव हुआ कि बांसुरी में सुर जाग उठेंगे...जरूरी नहीं कि बांसुरी मुंह लगाने से ही बजे, हवा भी तो सुर जगा सकती है...और उसका गीत मुझे सदाके लिए जीत लेगा।

मुझे एक पुरानी कथा याद आ गई। देखा कि सामने एक आश्रम है। मैं आश्रम के द्वार की ओर चला गया। देखा एक सुन्दर युवती मुंह विसूर रही है। भीतर से ऋषि बाहर आता

ठण्डा और भारी !

मैंने बोलना बन्द कर दिया था। कौन जाने यह क्या चीज़ थी जो मेरे भीतर ब्रह्मचर्य के विचार का पीछा कर रही थी। इस विचार की आवाज़ शरीर की एक-एक गहराई से सुनी-अनसुनी-सी उठ रही थी। यह कुछ ऐसी अवस्था थी जो सोते-सोते छाती पर हाथ आ पड़ने से हो जाती है......कोई मेरा दिल खटखटा रहा था। मैंने एक अंगड़ाई ली। हाथ की ठण्डी अंगुलियाँ पेट पर आ लगीं। अब यह गरम था। जाँघों में भी कुछ गति अनुभव हुई और यह भी अनुभव होने लगा कि पैर भी अब मेरे शरीर से अलग नहीं।

सूरजकुमारी भी चुप थी। पर जब उसकी बाहें मुझे भींचने के लिए फैलती और सिमिटती थीं, वह कनखियों से मेरी ओर देखकर कुछ कहना चाहती थी। पर उसके होठ जो देर तक उड़ते रहनेवाले पक्षियों के समान पंख समेटकर आराम कर रहे थे, हिलकर रह जाते। अधसोई-सी उसकी आँखें थीं जैसे घने जंगल की छाया में किरणें झिलमिला उठती हैं। उसकी आँखों में मूक-सी मुस्कान थर थराने लगती। अपनी आँखें मैंने उसकी गर्दन की ओर मोड़ीं। देखा कि उसकी रगें मदहोश-सी लेटी हैं।

ज़ोर से कन्धे हिलाकर मैं उसकी आँखों के अन्दर झांकने लगा। क्या यों देखना पाप है ? क्या ब्रह्मचर्य ही सबसे ऊँची वस्तु है ? क्या इसके लिए समस्त सौन्दर्यबोध छोड़ देना चाहिए—यह सब सौन्दर्यबोध जो सुन्दरता, गरमजोशी और आत्मविस्मृति से मिलकर बना है ?

सूरजकुमारी जो पहले ऊंघ-ऊंघ जाती थी अब शायद किसी सपने की सुखदायक छाया के बजाय स्वयं जीवन में थिरकनेवाले स्नेह का आनन्द लेना चाहती थी। उसकी आँखें फैलने लगीं। पलकों की श्यामलता धीरे-धीरे दूर होती गई।

मेरी आँखें खुल गईं। कुछ देर तो नीले आकाश के गिर्द किरणों का दृश्य रहा—एक मस्त फैला हुआ दृश्य। फिर यह दृश्य सिमटकर सूरजकुमारी की आँखों में बदल गया।

मेरा सिर उसकी गोद में था। वह मेरी ओर देख रही थी। मैं डर गया। मैंने आँखें बन्द कर लीं। सूरजकुमारी ने अपना हाथ मेरी आँखों पर फेरा। दुबारा आँखें खोलीं तो देखा कि खेमे के अन्दर हूँ, पैरों के पास अँगीठी सुलग रही है और कई उदास चेहरे मेरे गिर्द जमा हैं। देखने की शक्ति के साथ-साथ सुनने की शक्ति भी लौट आई। संस्कृत के कुछ बोल मेरे कानों में पड़े। कोई पण्डितजी मेरे लिए प्रार्थना कर रहे थे, अपने-आप या इन लोगों के कहने पर।

मैं खामोश था। कृतज्ञता के बोझ से दबा हुआ था। अपनी हठधर्मी पर लज्जित भी था। दोनों विचार काफी देर तक रहे। फिर कुछ शैतानी भावनाएँ जिनसे हमारा जीवन स्थिर है, धीरे-धीरे जागने लगीं। मैंने सोचा कि यदि यह हठधर्मी न होती तो सूरजकुमारी की गोद की रसानुभूति और शान्ति कैसे प्राप्त होती। सूरजकुमारी की आँखें सहसा चमक उठीं। मैं डर गया। क्या उसने मेरी भावना का भेद पा लिया है? शर्म, बेबसी, खुदफरेबी और न जाने किन-किन चीज़ों से पैदा होनेवाली एक मुस्कान मेरी उगती हुई मूँछों में कहीं गुम हो गई। सूरजकुमारी ने लोगों से कहा—"अब ये ठीक हैं......ठीक हो जायँगे। आप लोग बिस्तर वगैरह सँभालिये। अमरनाथ जाने का समय हो गया है।"

लोग इत्मीनान से यात्रा की तैयारी में व्यस्त हो गये। पर पण्डितजी अभी तक मंत्र पढ़े जा रहे थे......उनकी आँखें बन्द थीं। सूरजकुमारी ने एक बार पण्डितजी को देखा और फिर मेरी ओर मुंह मोड़कर एक ललचाई-सी अदा से मुस्कराकर कहा—"उठो, ब्रह्मचारीजी!"

लावारिस

कूच बिहार के प्लेटफार्म पर गाड़ी एक चीख के साथ रुक गई और परितोष खिड़की के रास्ते झट एक डिब्बे में घुस गया। नीचे से सान्याल और बोस सब सामान उसे थमाते चले गये और बार-बार उसे ताकीद करते रहे कि वह एक पूरी सीट पर कब्जा जमा ले।

सान्याल हँस-हँसकर कह रहा था—"परितोष हमारा भाई है। वह नाराज नहीं हो सकता।" बोस योंही मुस्करा रहा था और परितोष एक कोने में सिमट कर बैठ गया।

पर डिब्बे में धक्कापेल हो रही थी। दरवाजा बन्द कर लिया गया था। वही लोग जो कुछ देर पहले प्लेटफार्म पर खड़े अन्दरवालों की मिन्नत कर रहे थे अब बाहरवालों को अन्दर आने की इजाजत देने को तैयार न थे।

सामने की सीट पर पुराने चीथड़ों में लिपटी-सिमटी एक जिन्दा लाश नजर आ रही थी जिसके चेहरे पर ऐसी मुर्दनी टपकती थी कि हर देखनेवाले को खामख्वाह घिन आने लगती और वह सोचता रह जाता कि सचमुच इस हड्डियों के ढांचे में

ज़िन्दगी है भी या नहीं। इस जिन्दा लाश के पांव की तरफ एक पीले चेहरेवाला इन्सान उकडूं बैठा न जाने किस सोच में खोया हुआ था।

उधर एक कोने में सफेद धोती और कमीज पहने हुए एक भारी भरकम आदमी बड़ी बेतकल्लुफी से सिगरेट के हलके-हलके कश लगा रहा था। उसके चेहरे से यह मालूम होता था कि वह कोई पेन्शन-याफ्ता है। वह अपने सिगरेट-केस को कभी-कभी यों हाथों में उछालने लग जाता जैसे वह बीड़ियों और सस्ते सिगरेटों के धुंए में लिपटे हुए वातावरण से चिढ़कर अब महँगे तम्बाकू की प्रशंसा में एक प्रभावशाली भाषण देना चाहता हो। फिर उसके चेहरे पर एक कटुता-सी उभरी जिसका सम्बन्ध उस अकाल से था जो बंगाल का गला घोंट रहा था। वह यह कहना चाहता था कि इस अकाल ने अमीरों को भी कुछ कम तंग नहीं किया। मैं हमेशा ५५५ के सिगरेट पसन्द करता था और अब कैवेण्डर से ही काम चला रहा हूँ।

डिब्बे में एक तरफ फौजी जमे बैठे थे। वे अपने कहकहों से इस वातावरण में कुछ अजीब-सी निरर्थक रंगीनी पैदा करने का यत्न कर रहे थे। परितोष ने सोचा कि पास के सिपाही से आसाम के मोर्चे के हालात पूछे पर दूसरे ही क्षण वह कुछ सोचकर चुप बैठा रहा।

सान्याल और बोस ने भी अपना-अपना सिगरेट सुलगा लिया। पर जब बार-बार उनकी निगाहें उस जिन्दा लाश की ओर उठतीं तो उन्हें ऐसा अनुभव होने लगता कि सिगरेट में तम्बाकू की जगह गोबर भरा पड़ा है। सान्याल ने बोस की ओर देखते हुए एक खोखला-सा कहकहा लगाया, जैसे कह रहा हो—आओ सिगरेट बाहर फेंक दें और इस सिख सिपाही को यही समझने का अवसर दें कि हमें उसकी धार्मिक

भावनाओं का सम्मान स्वीकार है। पर बोस निर्जीव मूर्ति के समान बैठा रहा। यों ही वे सिगरेट का धुंआ छोड़ते रहे। ऐसे वातावरण में सिगरेट के बिना तो चारा न था।

फिर परितोष की ओर देखते हुए बोस के चेहरे पर शरारत-भरी मुस्कान थिरक उठी। सान्याल बोला—"परितोष को कवि किस कम्बख्त ने बनाया था? मेरी तो समझ में नहीं आता कि वह सिगरेट पिये बिना कैसे गीत लिख लेता है।

बाईं ओर से एक आवाज आने पर कि हम तबाह हो गये हैं, बोस ने जोर का कश लगाते हुए कहा—"परितोष, उधर भी तुम्हारा एक भाई बैठा है। अजब बकवास है। आखिर तुम लोगों से कोई पूछे कि बताओ तुम क्यों तबाह हो गये। उधर तो तुम ध्यान ही न दोगे। योंही खामखाह चिल्लाते रहोगे।"

परितोष इसके जवाब में ऊंची आवाज से अखबार पढ़ने लगा—"कलकत्ते में एक सप्ताह में एक हजार से ऊपर मौतें हुईं।"

सान्याल ने बीच में टोकते हुए कहा—"मर गये सो मर गये। तुम क्यों उनका रोना रोते हो?"

बोस ने परितोष के हाथ से अखबार छीनते हुए कहा—"बंगाल में लाशें ही लाशें नजर आ रही हैं।"

बीमार ने अपने पीले चेहरेवाले साथी की ओर अपना मरियल-सा हाथ उठाया। पर यह उसके अपने सीने पर गिर गया। शायद वह कहना चाहता था—मुझे मक्खियां दिक कर रही हैं और तुम उन्हें उड़ा भी नहीं सकते। सब लोगों की निगाहें उसकी ओर उठ गईं। सब हैरान थे कि अभी तक यह लाश किस तरह जिन्दा रहने का यत्न किये जा रही है। उसके चेहरे पर मैल की पपड़ी जमी हुई थी। उसके बाल किसी जमाने में अपने घुंघरों पर गर्व करते होंगे। पर अब तो उनसे बड़ी भयानक

सी बू आ रही थी। शायद यह बीमार अपने गांव में पहुंच कर मरना चाहता था। पर वह अब भी कहां जिन्दा था। लाश ही तो था। उसने फिर हाथ-पैर हिलाये, जैसे वह अभागा आदमी यह कहना चाहता हो—मुझे लाशों में क्यों गिनते हो? मैं जिन्दा हूँ। मैं जिन्दा रहूंगा।

सान्याल कह रहा था—"परितोष के गीत एक दिन सारे देश में गूंज उठेंगे।"

बोस बोला—"मुझे परितोष का वह गीत बेहद पसन्द है—फिर जागेगा बंगाल!"

सब यही सोच रहे थे कि न जाने गाड़ी कब छूटेगी। सबके गले खुश्क हो रहे थे और अब थूक निगलने को भी किसी का जी नहीं चाहता था। डिब्बे का घुटा-घुटा-सा वातावरण और उस पर इस जिन्दा लाश की सड़ाँद ने बुरी तरह नाक में दम कर रखा था और हर कोई यही अनुभव कर रहा था कि अभी थोड़ी देर में उसे मतली होने लगेगी।

परितोष ने सोचा सब खुशबुएं बदबुएं, बनती जा रही हैं और जिन्दगी को कै पर कै आ रही है। निस्सन्देह मेरे गीत इस दुःख-दर्द का इलाज नहीं कर सकते। कोई और समय होता तो वह सन्तरेवाले को आवाज देता। बंगाल मर रहा हो और वह गाड़ी में बैठा मजे से संतरे खाये, उसे यह किसी भी अवस्था में स्वीकार न था। आज रिफ्रेशमेंट-रूम में सान्याल और बोस पूरा केक खत्म कर गये थे। पर उसने तो एक कप चाय भी न पी थी। अब प्लेटफार्म से आती हुई खोंचेवालों की आवाजें उसके दिमाग पर बुरी तरह हथौड़े चला रही थीं।

सिख सिपाही अपनी पगड़ी पर हाथ फेरता हुआ आसपास के लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने का यत्न कर रहा था। वह कह उठा—"हम लोगों को सबसे ज्यादह दो फूलवाले

तंग करते हैं।"

सान्याल और बोस चौंककर बोले—"अजी ये दो फूलवाले क्या बला हैं ?"

उस समय सिख सिपाही सान्याल और बोस से ज्यादह बातें न करना चाहता था, क्योंकि वह सोच रहा था, कि ये कैसे अजीब आदमी हैं जिन्हें जिन्दा शरीर से भी मुर्दा मांस की सड़ाँद आती है। हमें तो कभी महीने-महीने के मरे हुए आदमियों से भी ऐसी बदबू नहीं आती। पर यह देखकर कि आखिर वे उसकी बात में दिलचस्पी दिखा रहे हैं, वह कह उठा—"ये लोग जो बी० ए०, एम० ए०, पास करके अपने कोट पर दो फूल लगा लेते हैं और फौज में भर्ती होकर लफ्टैन बन जाते हैं, वे बन्दूक उठाना भी तो नहीं जानते। वे सिर्फ कलम और हुक्म चलाना जानते हैं।"

परितोष ने सोचा—क्या खूब ! कलम और हुक्म अर्थात् दो फूल। उसे ध्यान आया कि इस सिपाही से पूछे कि आसामियों को उसने कैसा पाया और क्या आसाम में भी उसकी किसी कवि से भेंट हुई थी। पर यह सोचकर कि दो फूलवालों ने उसे कब यह आज्ञा दी होगी कि वह मोर्चे के काम से अवकाश के क्षणों में आसामियों से मेलजोल बढ़ाये, वह चुप बैठा रहा।

बीमार के चेहरे पर बराबर मक्खियां भिन भिना रही थीं जिन्हें वह कमजोर हाथों से उड़ाने का असफल प्रयत्न किये जा रहा था। उसका साथी न जाने किस सोच में गुम-सुम बैठा ऊंघ रहा था।

परितोष ने सोचा कि सन्याल और बोस भी तो दो-फूल वाले हैं और बी० ए०, एम० ए० पास करने के कारण तो मैं भी दो फूलवाला कहला सकता हूँ। पर मेरी तो केवल कलम चलती है। उनके हुक्म ने मेरी कलम को खरीद लिया है। मेरे

गीत अब उनकी जायदाद हैं। चाहे मैं पिंजरे में फँसे हुए नये पंछी के समान लाख फड़फड़ाऊं। इससे क्या लाभ ?

बीमार ने फिर हाथ-पैर हिलाये। मक्खियां बराबर भिन-भिना रही थीं। अब जैसे उसकी ओर कोई देखेगा भी नहीं। सब ने मुंह फेर लिया था। पर परितोष और सिख सिपाही की निगाहें बार-बार बीमार की ओर उठ जातीं। वे उसकी सहायता करना चाहते थे। परितोष ने सोचा—यह सिपाही तो इतना भी कर सकता है कि अब छुट्टी पर घर जाने के बजाय इस बीमार को गाड़ी से उतार कर किसी हस्पताल में ले जाय और जब तक यह अच्छा नहीं हो जाता अपनी छुट्टी में वृद्धि कराता रहे, पर मैं तो इतना भी नहीं कर सकता।

सान्याल ने बीमार की ओर घृणा से देखते हुए कहा—"इस उमस में हम मरे जा रहे हैं और अभी न जाने यह गाड़ी कब तक रुकी रहेगी।" सचमुच उसका उमस से इतना बुरा हाल नहीं हो रहा था जितना कि उस जिन्दा लाश की मौजूदगी से। वह चाहता था कि यदि कुछ और नहीं हो सकता तो यह तो जरूर होना चाहिये कि उसे सामने की सीट से उठवा दिया जाय।

उमस से बचने के लिए भारी भरकम पेन्शनयाफ्ता एक सचित्र मासिक से अपने मुंह पर पंखा करने लगा। उसने मासिक को उलटा पकड़ रखा था। परितोष को यों लगा जैसे यह आदमी दो फूलवालों का भी दो फूलवाला है और उसने इस मासिक को नहीं बल्कि बंगाल को उलटा पकड़ रखा है।

सान्याल बोला—"बोस! कोई ऐसा कानून नहीं बना जिसके अनुसार गन्दे बीमारों को गाड़ी में यात्रा करने से रोका जा सके—" वह कुछ और भी कहता पर सहसा गाड़ी के चल पड़ने से उसकी बात अरी ही रह गई।

सबने सन्तोष का सांस लिया। बीमार ने भी इधर-उधर हाथ-पांव हिलाये। मक्खियां भी कुछ देर के लिए उसके मुंह से उड़ गईं। पर थोड़ी देर बाद वे फिर उसके मुंह पर भिनभिनाने लगीं।

शायद मक्खियाँ मौत की रट लगा रहे थे, पर बीमार अभी मरना नहीं चाहता था। अभी तो उसका विचार था कि उस का खून काफी गरम है और उसकी हड्डियां भी चलने-फिरनें के योग्य हो सकती हैं। हाँ, मक्खियां उसे बराबर विश्वास दिलाये जा रही थीं कि अब जीने की लालसा व्यर्थ है।

परितोष ने एक और करवट ली और वह सोचने लगा कि सचमुच बंगाल ही नहीं, सारा हिन्दुस्तान ऐसा ही एक मरीज़ है।

भारी भरकम पेन्शन-याफ्ता ने रूमाल से मुंह पोंछ कर नया सिगरेट सुलगाया और वह मासिक के आवरण की सुन्दरी को निहारने लगा।

फौजी सिपाही युद्ध की बातें भुलाकर घर की बातें ले बैठे थे। उन्हें विश्वास था कि गाड़ी अकाल-पीड़ित बंगाल से गुजर कर उन खेतों में पहुँच जायगी जहां आज भी सुनहरी बालियां खुशहाली का सन्देश सुनाती हैं।

बीमार का साथी बराबर सिर घुटनों में दबाये बैठा ऊँघे जा रहा था। शायद वह मक्खियों से भयभीत था और सोच रहा था कि यही एक दिन मेरे मुख पर भी भिनभिनायेंगी।

सिख सिपाही ने उसका कन्धा झँझोड़कर कहा—"कहाँ जाओगे तुम लोग ?"

उसने जैसे सपने से चौंककर सिपाही की ओर देखा और जब सिपाही ने फिर एक बार अपना प्रश्न दुहराया तो वह कह उठा—"रंगपुर।"

"रंगपुर ?...रंगपुर तो अब नजदीक ही होगा।"

पर उसके बाद उसने सिपाही की ओर इस तरह देखा जैसे कह रहा हो—तुम्हें हमारी क्या फिकर पड़ी है ? तुम तो आराम से बैठे हो।

परितोष अपने विचारों में मग्न सोच रहा था कि यह देश कितना विशाल है। पर यह गुलाम क्यों है ? यह गुलाम है, इसीलिए आज यह अकाल का शिकार हो रहा है। हर तरफ चोर-बाजार गरम है। हर तरफ कमीने नीच नफाखोरों की चाँदी है। उसने सारे डिब्बे को घूरकर देखा। उस समय सिख सिपाही भी मजे से कुछ चबा रहा था। फिर उसने सोचा—शायद यह सिपाही इसलिए घर जा रहा है कि उसकी पत्नी ने एक बालक को जन्म दिया है। पत्नी और बालक को देखकर वह आसाम के मोर्चे पर लौट आयेगा। वह सिपाही से कहना चाहता था कि आज तुम मुर्दा देश की रक्षा कर रहे हो, कल तुम्हारा बेटा जिन्दा देश की रक्षा करेगा।

बार-बार परितोष की निगाहें उस बीमार की ओर उठ जाती थीं। सिपाही के बाद वही दूसरा व्यक्ति था जिसे बीमार से घिन नहीं आ रही थी।

भारी भरकम पेन्शनयाफ्ता ने जाने क्या-क्या फैसले करते हुए कहा—"सरदार साहब ! वह दो फूलवालों की बात तो बिल्कुल गलत मालूम होती है। शिक्षा तो बुरी चीज नहीं।"

सिख सिपाही एकदम हँस दिया और बोला—"छोड़ोजी, बी० ए०, एम० ए० ही तो दो फूलवाले नहीं। दो फूलवाले तो हर जगह मौजूद हैं। अदालत के मुन्शी और चपरासी, गाँव के पटवारी, जमींदार के गुमाश्ते और पुलिसवाले—ये लोग भी तो दो फूलवाले हैं।"

भारी-भरकम पेन्शनयाफ्ता के चेहरे पर मुस्कान थिरक उठी,

जैसे कह रहा हो—धन्यवाद, कम-से-कम मुझे तो तुमने दो फूल-वालों में शामिल नहीं किया।

फौजी सिपाही अब सीटियाँ बजा रहे थे, जैसे प्रत्येक क्षण के पश्चात् वे अपने घरों के समीप पहुँचते जा रहे हों। बन्दूकों से उठती हुई सनसनाती आवाजों की बजाय अब कोमल-सुकुमार कलाइयों पर खनकती चूड़ियों की कल्पना उनकी आँखों में नशा पैदा कर रही थी।

सान्याल ने सरपरस्ताना अन्दाज में कहा—"बोस ! परितोष अपना मूल्य नहीं बता सकता। वह रत्न है। रत्न का मूल्य जौहरी ही जानता है।"

बोस ने एक बार परितोष की आँखों में झाँकने का यत्न किया कि उस पर क्या प्रभाव हुआ। पर वह तो गुमसुम बैठा था। सान्याल ने फिर शह दी—"परितोष के गीत लाजवाब हैं।"

बोस कह उठा—"मुझे तो उसके लिखे हुए अकाल के गीत ही सब से ज्यादह पसन्द हैं। यह हमारे देश के दुःख-दर्द का इलाज है। जरा इन्हें प्रकाशित तो होने दीजिये फिर हम इन्हें अंग्रेजी में भी प्रस्तुत करेंगे।

"हम परितोष को नोबल पुरस्कार दिलायेंगे।

"एक ही शर्त पर कि एक लाख बीस हजार की रकम हमारे 'सोनार बांगला साहित्यतीर्थ' की निधि में आ जाय। रविबाबू ने भी तो अपना पुरस्कार शान्तिनिकेतन को दे दिया था। परितोष भी त्याग कर सकता है।

"त्याग का क्या मतलब, बोस ? परितोष हमारा भाई है।"

बोस ने अब फिर परितोष के चेहरे पर इस वार्तालाप की प्रतिक्रिया देखने का यत्न किया और फिर न जाने क्या सोचकर उसकी पीठ थपथपाने लगा और कहता गया—"परितोष ! तुम्हारे गीत हमारे गीत हैं।"

परितोष ने चौंककर अपने प्रकाशकों की ओर देखा और फिर ज़िन्दा लाश की ओर। जैसे वह अपने कदरदान प्रकाशकों से कहना चाहता हो —ऐसी ही एक लाश पर भी तो मेरा एक गीत है।

बोस कहे जा रहा था—"तुम्हारे गीतों पर संसार गर्व करेगा, परितोष! इनका प्रकाशन तथा प्रसार हमारा काम है।"

परितोष के जी में तो आया कि अपने प्रकाशकों से साफ़-साफ़ कह दे कि वह अपने गीत प्रकाशित करवाना नहीं चाहता, क्योंकि गीतों से अकाल नहीं मिट सकता और यह तो ऐसे ही है जैसे कोई मुर्दे के कान में ढोल बजाकर यह आशा करे कि वह जी उठेगा।

सान्याल और बोस खिड़की से क्षितिज की ओर देखने लगे। कदाचित् वे 'सोनार बांगला साहित्यतीर्थ' के उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न देख रहे थे। परितोष को विद्यार्थी-जीवन याद आ गया जब वे तीनों साथ-साथ पढ़ते थे। उसे कभी विचार न आया था कि वह रोटी के लिए अपने साथियों का मुहताज होकर रह जायगा। उसके मन में यह विचार बिजली के कौंदने के समान पैदा हुआ, उनसे साफ़-साफ़ कह दे—मेरे गीत मुझे वापस दे दो। मैं उन्हें किसी भी मूल्य पर तुम्हें नहीं दे सकता। मैं कवि भी नहीं बनना चाहता। मैं अब अपने लिए कोई नय रास्ता तालाश करूंगा पर फिर उसके मन में देश के महाकवि के शब्द गूंज उठे—परितोष के गान सदैव जीवित रहेंगे,......
वह चिढ़ गया। वह कुछ फैसला न कर सका।

बीमार के चेहरे पर मक्खियां जैसे जम गई हों। मालूम होता था कि ये मक्खियां नहीं, चेचक के दाग हैं। सबसे पहले उन्होंने ही बीमार की मौत को आते देख लिया था। ज़िन्दा लाश मुर्दा लाश में परिवर्त्तित हो रही थी। उसके साथी ने उसके

सिर को जांघ पर रखते हुए चिल्लाकर कहा—"दादा !—दादा !—"

जिन्दा लाश ने दम तोड़ दिया।

लोग घबरा गये। कुछ युवकों को तो इतना क्रोध आया कि उठकर लाश को चलती गाड़ी से नीचे फेंक दें। पर वे लाश को छूना भी तो नहीं चाहते थे।

लाश के साथी ने रोते-रोते अपनी जेब से एक टिकट निकालकर स्वर्गीय दादा की जेब में डाल दिया। वह रो-रोकर कह रहा था—"मेरे पास कुछ नहीं। मुझे बचाओ। भगवान् के लिए दादा को अगले स्टेशन पर ही उतरवा दो।"

सिख सिपाही हैरान होकर बोला—"तो रंगपुर कौन जायगा ?"

लाश का मुंह खुला हुआ था, जैसे वह कुरूप मरीज मरकर भी यह कहना चाहता हो—मैं जिन्दा हूँ। मैं जिन्दा रहूँगा।

परितोष सोचने लगा कि यह देश कभी नहीं मर सकता। इसकी छिपी हुई शक्तियां कभी खतम नहीं होंगी। मेरे गीत इन्हीं शक्तियों के परिचायक हैं।

लाश का साथी रो-रोकर कह रहा था—"मुझे बचा लो। मुझे पुलिस पकड़ लेगी। पुलिस मुझे पीटेगी। मैं मर जाऊंगा। वे मेरा खून पी लेंगे।"

परितोष ने उसके पीले चेहरे की ओर देखते हुए सोचा कि इस पीड़ित व्यक्ति के शरीर में और कितना खून बाकी होगा। फिर सान्याल और बोस की तरफ देखते हुए वह बोला—"मेरे गीत तो जब प्रकाशित होने होंगे, हो ही जायँगे। आओ, इस आदमी की सहायता करें।"

पर सिख सिपाही के अतिरिक्त किसी ने उसकी हाँ में हाँ न मिलाई। सिख सिपाही ने लाश के साथी को समझाया कि वह

अगले स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही किसी दूसरे डिब्बे में चला जाय और वह सामने से यों आभार मानती हुई आँखों से देखने लगा जैसे कह रहा हो—मुझे इस सहायता की बहुत पहले से आशा थी।

ज्योंही गाड़ी अगले स्टेशन पर रुकी वह लपककर नीचे उतर गया और न जाने कहां गुम हो गया।

फिर भारी-भरकम पेन्शनयाफ्ता एक थानेदार को बुला लाया। लाश के सम्बन्ध में जांच करने के लिए गाड़ी थोड़ी देर के लिए और रुक गई। सिपाहियों को आवाज़ दी जा रही थीं। बड़ी कठिनाई से दो सिपाही मौके पर हाज़िर हुए। सिपाही भंगियों को आवाजे देने लगे। पर वे न जाने कहां गायब हो गये थे।

सिख सिपाही परितोष के कान के पास मुंह ले जाकर बोला—"ये सब दो फूलवाले हैं।"

परितोष ने सिख सिपाही की बात सुनी-अनसुनी करते हुए सान्याल से कहा—"आओ, हम लाश को कन्धा दें।"

"हम लाश को कन्धा दें?" सान्याल ने नाक सिकोड़ते हुए कहा, "यह काम तो कुली बहुत आसानी से कर सकते हैं।"

"कुली?" बोस ने चिढ़कर कहा, "पर पैसे कौन देगा?"

भारी-भरकम पेन्शनयाफ्ता ने कहा—"ये लोग मरते समय इतना पैसा भी तो नहीं छोड़ जाते कि कुली के पैसे चुकाये जा सकें।"

लाश जैसे हँस रही थी और उसके खामोश कहकहे इस वातावरण में अजब फबतियां कस रहे थे। जैसे वह कुरूप मरीज कह रहा हो—मैं चाहूँ तो उठकर खुद भी प्लेटफार्म पर लेट सकता हूँ। मुझ में अभी इतनी ताकत बाकी है।

सिख सिपाही कह उठा—"मोर्चे पर मैंने सैंकड़ों लाशें उठाईं। यह भी अपने भाई की लाश है। और यह कुछ वजनी भी तो न होगी।"

परितोष अपनी जगह से उठकर खड़ा हो गया और उन्होंने लाश उठा ली।

वे लाश को प्लेटफार्म पर रखकर उसके सिरहाने और पांयते खड़े हो गये। लोग जमा हो रहे थे। तरह-तरह की बातें होने लगीं। थानेदार, स्टेशनमास्टर और गार्ड लोगों को लाश से परे रहने का आदेश दे रहे थे। सिपाही भंगियों को लेकर अभी तक नहीं पहुँचे थे।

परितोष और सिख सिपाही की ओर लोग यों घूर रहे थे जैसे वे ही सचमुच इस इन्सान की मौत के लिए जवाबदेह हों। तरह-तरह की आवाजों को चीरती हुई गार्ड की विसिल एक प्रतिरोधपूर्ण चीख के समान गूंज रही थी। उस समय बिजली के कौंदने के समान घरवालों के चेहरे सिख सिपाही की आंखों में फिर गये और वह लपक कर गाड़ी में जा बैठा।

परितोष लाश के सिरहाने खड़ा था। भयानक साये दिये की लौ को निगल चुके थे। मौत ने लोरी गा दी थी। शायद वह सोच रहा था कि यह दिया दुबारा रौशन किया जा सकता है और मौत की लोरी को झुठलाना भी कठिन नहीं।

सान्याल ने खिड़की से मुंह निकाला और चिल्लाकर कहा—"यह तो केवल एक लाश है। परितोष, हमारा देश तो ऐसी लाखों लाशों से पटा पड़ा है।"

बोस जो उस समय गाड़ी से उतरने के अन्दाज में खड़ा था, अपने हाथ में अकाल के गीत की पाण्डुलिपि सँभालते हुए रुँधे हुए गले से बोला—"तुम्हारे गीतों से इन लाशों का इलाज हो जायगा। परितोष, तुम आ क्यों नहीं जाते ?"

गार्ड ने आखिरी विसिल दी और गाड़ी चल दी। सान्याल और बोस बराबर परितोष को पुकार रहे थे। सहसा परितोष के पैर गाड़ी की ओर उठे, जैसे वह भागकर सान्याल के हाथों से

अकाल के गीत की पाण्डुलिपि छीन लेना चाहता हो। पर दो कदम चलकर ही वह रुक गया। उसे ध्यान आया कि उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना प्लेटफार्म पर उसके पैरों में निश्चल और गति-हीन पड़ी है और उसे इस चेतनाहीन गीत के ठण्डे शरीर को अपना गरम खून देकर गरमाना है। और अगले ही पल वह उड़ने के लिये उत्सुक सारस के समान बाहें फैलाये हुए उस लाश पर झुक गया।

शबनमा

बत्तियां जल चुकी हैं। चकले में रात जरा पहले ही उतर आती है। शबनमा एक चालीस-बयालीस बरस की औरत अपने गाल रँग कर, होंट रँग कर कुर्सी पर आ बैठी है। धीरे-धीरे उसके होंट हिलते हैं। कुछ न कुछ गुनगुना रही होगी। ब्याह में क्या धरा था। यहां तो रोज ब्याह होता है, नये आदमी से घड़ी की घड़ी। वह एक अच्छी औरत है। नये लट्ठे की सलवार पहन कर तो वह जरूर अच्छी नजर आती है। अच्छी ही नहीं, जवान भी। और नहीं तो, जवानी अभी गई थोड़ी है। चालीस-बयालीस बरस की उमर भी कुछ उमर होती है?

उसकी आंखों में उसकी मुस्कान लहरा जाती है। गली से गुजरनेवालों पर उसकी उत्सुक नजर बराबर उठती रहती है।

अच्छा खासा कमरा है। बेचारी दीवारें बहुत पुरानी हो रही हैं। सामने की दीवार की नंगी काली-कलूटी ईंटें एक सदी पहले की याद दिला रही हैं। जाने किस भट्टे पर तैयार

हुई होंगी। जाने किस भाव पर खरीदी गई होंगी। शबनमा शायद किसी ऐसी बात का उत्तर न दे सके। ताक में दिया रौशन है। दिये की लौ थरथरा रही है। दिये की कीमत बहुत अधिक तो न होगी और शबनमा की कीमत—यह तो स्पष्ट है कि इधर बहुत कम हो गई है। पर दिये से तो कहीं अधिक होगी अब भी। हर चीज की अपनी कीमत होती है। इस मकान ही को लीजिये। यह चकले में न होता तो इसका किराया बहुत ही कम होता।

यह कांगड़ी जिसमें कोयले दहक रहे हैं, किसी काश्मीरी सहेली से मिली हुई चीज़ है। जांघों के समीप रखी हुई कांगड़ी के पास जब वह मुंह ले जाकर फूंक मारती है तो उसके गाल गरम हो जाते हैं, होंट और भी गरम हो जाते हैं। उसकी आंखों में फिर एक मुस्कान लहरा जाती है। उसके होंट हिलते हैं धीरे-धीरे, जैसे वह गुनगुना रही हो। जाड़े में कांगड़ी की किस्मत चमक उठती है। कांगड़ी ही की क्यों, औरत की भी। अच्छा रिवाज है काश्मीर का......वह काश्मीरन होने का धोखा तो नहीं दे रही। धोखा दे भी तो नहीं सकती। गाल रंग सकती है, पर काश्मीरी आंखें किससे लेगी मांगे की ?

सामनेवाली पड़ोसिन तो बगैर कांगड़ी के बैठी है। बे-पनाह जाड़े से ठिठरती, ओढ़नी को अपने जिस्म के गिर्द कसती वह जाने क्या सोच रही है। शबनमा उसकी ओर देखती है तो उसे वे दिन याद आ जाते हैं जब वह भी चकले में नई-नई आई थी। जवानी खुद गरम होती है, खुद एक कांगड़ी। यों जवानी चली तो नहीं गई अभी। जरूरत पड़ने पर वह भी कांगड़ी के बगैर रह सकती है।

अब के जाड़ा पिछड़ कर आया। आते ही पूस की याद दिला दी। जाड़ा तो चकले का पुराना दोस्त है। दूसरे मौसमों

में भी यहां रात को मेला लगता है। हाँ, इस मेले पर पूर्ण यौवन जाड़े ही में आता है।

"जाड़ा तो अभी पड़ेगा और।"

"हां हां, जाड़ा तो पड़ेगा अभी और।"

"चाँद भी सहमा जाता है—पीला, खामोश चाँद !"

"और कितना चमकेगा जाड़े का चाँद ?"

सच है और कितना चमकेगा जाड़े का चाँद ? ज्यादह रौशनी यहाँ चाहिये भी तो नहीं। यहां पत्नियों के पति चले आते हैं। होनेवाली पत्नियों के होनेवाले पति भी। इसी प्रकार कितने ही फरिश्ते और शैतान भी जिन्हें पत्नियां प्राप्त होने की कोई आशा नहीं रही। और तो और, निर्धन और रोगी भी जेबों में अपनी कमज़ोर कमाई डाले इधर आ निकलते हैं। पेट की भूख भी होगी, पर इस वासना की भूख से उसका मुकाबला ही क्या ?......और यें रात की दुल्हनें हैं कि अपनी रज़ामंदी का मोल लगाती हैं। दाम खरे न करें तो खायें कहां से ? अजब मजदूरी है यह भी !

शबनमा अपने कमरे की पुरानी छत की ओर देखती है और सोचती है कि उसका शरीर भी पुराना हो चला है। बार-बार उसका हाथ माथे पर आ टिकता है जहाँ झुर्रियों का जाल बुना जा रहा है धीरे-धीरे। किस मकड़ी की कारस्तानी है यह ? वह बहुत टटोलती है, मकड़ी कहीं हाथ नहीं लगती। फिर उसका हाथ गालों पर आ टिकता है जहाँ हड्डियाँ उभर रही हैं। ऊँट का कोहान-सा बनता जा रहा है दोनों तरफ। नहीं नहीं, अभी तो वह काफी जवान है। चालीस-बयालीस बरस की उमर भी कुछ उमर होती है। उसकी आँखें तो सदा जवान रहेंगी। इतने बरसों से वह इनमें ममीरे का सुरमा डालती आई है। हां, भूखी जरूर है वह। भूख को झठलाना तो आसान नहीं।

उसकी पड़ोसिन ने चाय मंगवाई है। गरम चाय जिस्म को गरम रखती है जाड़े में। ठीक तो है।

"थोड़ी तुम पी लो, शबनमा!"

"मैं अभी न लूंगी, खुरशीद! बस पीओ शौक से।"

"अच्छा तो एक समोसा ही कबूल कर लो।"

"जरूरत होती तो खुद मांग लेती। बस खाओ शौक से।"

शबनमा अपनी उदासी को छिपाने की कोशिश करती है। इन्साफ, आज़ादी और इन्सानियत बहुत बड़ी बातें हैं। एक दूसरे की मदद करने का ख़याल भी कुछ कम नहीं...... पर कमाई होनी चाहिये अपनी। अपना पेट, अपनी चाय........ रोटी...सब कुछ......खुद्दारी तो जभी कायम रहती है। कब बुझती है जिन्दगी की बत्ती, खुद्दारी की बत्ती?...जब सपनों के पूरा होने में ज़रा यकीन न रहे...सपनों को भी छोड़िये... भूख का इलाज तो होता रहे। दो और दो?—पता नहीं किसने किसी भूखे से पूछा। चार रोटियां—उसने जवाब दिया। भूखा आदमी और किसी पहलू से सोच ही नहीं सकता।

उसे अपने रँगे हुए गालों पर गुस्सा आने लगता है। रँगे हुए होंटों को चूस कर वह इनका रंग थूक देना चाहती है। किसी को इन गालों की जरूरत नहीं, न इन होंटों की। बेकार ही पाउडर मलती रही, सुर्खी मलती रही। आज ही नहीं, कल भी और परसों भी। तीन दिन से कोई शरीफ आदमी अन्दर न आया, न शरीफ न बदमाश।

"क्या से क्या हाल हो गया दुनिया का। देखने तो आते हैं। दस छोड़, बीस छोड़, पचास फेरे लगाते हैं। कोई दाम पूछ कर ही झट से परे हट जाते हैं। समझ में नहीं आता कि—"

"समझ में क्या आये खाक? बुरा हाल है। परसों तीन

आये—तीन सवारियाँ! कल सिर्फ एक और आज एक की भी आस खतम हो रही है। हालांकि सब देखते हैं नया माल है—गदराई हुई जवानी।"

भूख हमेशा ज़िन्दगी की हतक करती आई है। कई सदियों से, अनगिनत नस्लों से ऐसा ही होता आया है। कितनी सिकुड़ जाती है दुनिया जब भूखे पेट में रोटी का एक भी टुकड़ा नहीं जा पाता।

शबनमा दिये की थरथराती लौ की ओर निगाह उठाती है। तेल है तो दिया है। रोटी के बगैर कैसा हुस्न, कहां की जवानी! पर नहीं, अभी तो वह काफी जवान है। चालीस बयालीस बरस की उमर भी कुछ उमर होती है?

उधर से एक बड़े डील-डौल वाला लम्बा-तड़ंगा आदमी आ निकलता है। "लाओ किराया?" वह ऊंची आवाज से कहता है।

"आज तो तैयार नहीं।"

"तैयार नहीं? नया महीना तो शुरू हो गया।"

"देने से तो इन्कार नहीं—आज ही चाहिये तो छः रुपये ले जाओ।"

"और एक रुपया गांठ से डालूँ?"

"सात तो नहीं मेरे पास—और सुन......लोग मुझे दो रुपये देते हैं। आठ-दस रात भर के लिए—तू आज रात यहीं रह ले.....किराया विराया क्या मांगता है?...

"अरी वाह री बूढ़ी घोड़ी! अच्छा ला ये तो निकाल। एक कल मिल जा ज़रूर। मालिक भी सच्चा है। जिसकी खोली में बैठ के रूप की हाट लगा रखी है, वह भाड़ा तो मांगे गा ही वक्त पर।"

शबनमा छः रुपये निकाल कर उसकी हथेली पर रख देती

है और वह बड़े डील-डौलवाला आदमी मूंछों पर ताव देता हुआ और शबनमा के सामनेवाली पड़ोसिन की ओर घूरता हुआ दूर निकल जाता है। अभी तक उसकी ऊंची आवाज़ शबनमा के कान में गूंज रही है।

झट यह सोचकर कि कसूर तो असल में उस दाई का है जिसने उसके गले में अँगुली डालकर इसे अपने ही हिसाब के अनुसार चौड़ा कर दिया था, वह उसके असभ्य व्यवहार को क्षमा कर देती है।

"ऐसे लोगों से खुदा ही बचाये, शबनमा!...और यह जवान तो पूरा लठैत है कोई।"

"हां, लठैत है।"

"वह तो तुम्हारी तरफ इस तरह लपक कर आया था जैसे तुम कोई औरत नहीं हो, बल्कि एक कबूतरी हो और उसके छतनारे से उड़कर इधर आ बैठी हो। मुझे तो बहुत गुस्सा आता है ऐसे लोगों पर।"

"गुस्सा तो आयेगा ही।"

कोई नहीं देता दाम रूप-जवानी के। तेल हो तो दिया जलता है। रोटी है तो शरीर है। शबनमा की आँतें मिनमिना रही हैं। पड़ोसिन से चाय पी ली होती, एक आध समोसा खा लिया होता। अब वह चाय न पिलाये, समोसा न खिलाये, मुट्ठी भर मूँगफली ही मँगवा दे। मूंगफली नहीं तो पैसे की मक्की ही ले दे।

कुर्सी से उठकर वह चबूतरे पर आ गई है। काश, कोई सवारी आ जाय। कौन ऐसा शरीफ आदमी होगा जो कुछ-कुछ आंखें भींच कर उसकी तरफ देखे और वह उसकी निगाह में जँच जाय। कोई आये तो सही। वह उसके साथ कोई दाम न

चुकायेगी। घड़ी की घड़ी वह उसकी बीबी की तरह ही लाज-भरी आंखों से उसे देखेगी......क्या हो गया मुझे आज ? कोई आ क्यों नहीं जाता, कोई शरीफ आदमी, कोई बदमाश ? दोनों में जौन-सा भी हो......वह चाहे तो पास की दुकान पर जा सकती है। कुछ न कुछ तो मिल ही सकता है मांगने पर। उधार तो उधार, भूखा पेट तो चोरी तक की सलाह दे देता है! नहीं नहीं, उसे किसी सवारी का इन्तज़ार है। सवारी ज़रूर आयेगी। वह फिर अपनी कुर्सी पर जा बैठती है। गली से गुज़रनेवालों की तरफ देखते हुए उसे यों महसूस होता है जैसे सागरतट पर बैठी कोई अप्सरा लहरें गिन रही हो। कोई अप्सरा शायद कभी यों भूखी न रही होगी। कोई न कोई लहर तो उसके पैर को छू ही सकती है। पर उसके पैर तो सूखे हैं। उसके पतले और खुश्क होंट बराबर कांप रहे हैं। दिया टिमटिमा रहा है। इतनी रौशनी कुछ कम तो नहीं। कांगड़ी ठण्डी हो गई है। इसी तरह एक दिन यह दिल भी ठण्डा हो जायगा। फिर न भूख होगी, न उसे हटाने की चिन्ता। दिया भी जले न जले........ लेकिन नहीं, वह ज़िन्दा रहेगी। उसका हुस्न ज़िन्दा है अब तक दिया भी जलता है अब तक। कांगड़ी में फिर दहकेंगे कोयले। पेट भी पालेगा अपना ईंधन। सवारी ज़रूर आयेगी। यह इन्तज़ार ही क्या कम वजह है जीने की?.......कोई आये तो सही। खुदा भी मर गया है आज। शैतान भी मर गया। मेरे लिए हर कोई मर गया। मुझे भी मर जाना चाहिये, कब्र की मिट्टी-तले दब जाना चाहिये। एक भूखी औरत कब तक जिन्दा रह सकती है ?......इन भावनाओं में उसकी आंखें गीली हो गई हैं। होंट यख़ हो रहे हैं। होने दो। परवाह नहीं। किसी को पसन्द ही नहीं आया रंग इनका। और गाल—रंगे हुए गाल

भी यख़ हो रहे हैं। किसी ने आकर इन पर अपने गरम-गरम होंट नहीं रखे। नहीं नहीं, यह बात नहीं। पेट का दोज़ख़ी तन्दूर ठण्डा हो गया। यही तो सारे जिस्म को गरम रखता है।

आईना उठा कर वह अपनी शकल देखती है। हुलिया बिगड़ रहा है—एक मरम्मत-तलब घड़ी की तरह। उसे यों मालूम होता है जैसे दिल की हलकी टिक-टिक भी खत्म हो रही है। काश, कोई घड़ीसाज़ आ जाये। नहीं नहीं, मुझे किसी घड़ी-साज़ की ज़रूरत नहीं। ख़मीरी रोटी के चन्द टुकड़े काफ़ी होंगे बस। साथ में अचार न हो तो न सही। पर रूखी रोटी कैसे निगलूंगी ?.......

हवा एकदम ठण्डी हो गई है। यह बस एक ही खबर सुना रही है कि कहीं दूर ओले पड़े हैं, नहीं तो हवा इतनी ठण्डी कैसे हो सकती थी। उसे यों महसूस हो रहा है जैसे सात महीने का हमल गिर गया हो......हमल ! हा, हा, हा—हँसा भी तो नहीं जाता—भूखी औरत को कैसी-कैसी बातें सूझती हैं...सीने के अन्दर हाथ डालकर वह अपने पिस्तानों को सहलाती है। किस कदर लचक रहे हैं ये दोनों कबूतर ! ठण्ड से मरे ही तो जाते हैं। नहीं नहीं, अभी तो वह काफी जवान है। चालीस-बयालीस बरस की उमर भी कुछ उमर होती है ?

"शबनमा ! शबनमा !"—खुर्शीद आवाज़ देती है—"अरी क्या सोच रही हो आंखें बन्द किये ?"

"कुछ नहीं। भूखा आदमी सोच ही क्या सकता है ?—यह पेट दोज़ख़—"

"सच है पेट से बड़ा और दोज़ख़ कोई नहीं, न ऊपर न नीचे। इसमें ज़रूर पड़ता रहे कुछ न कुछ। क्या खाओगी ?"

"कुछ नहीं, खुर्शीद ! मैंने तो सरसरी बात की थी। मैं भूखी थोड़े ही हूँ।"

"ठण्ड है जरा बस कुछ गरम-गरम—"

"क्या चीज ?"

"समोसे ?"

"समोसे।"

"तुम जानती हो, शबनमा, मुझे समोसे बहुत अच्छे लगते हैं।"

शबनमा उठकर खुर्शीद के यहाँ चली जाती है। दोनों मिलकर गरम-गरम चाय पीती हैं, समोसे खाती हैं। शबनमा समोसे को यों पकड़ती है जैसे अभी यह हाथ से निकल जायगा।

"अच्छा है यह ममोला।"

"ममोला ?"

"ममोला नहीं, समोसा। मैं भी एक ही पगली हूँ।"

ग्रामोफोन की आवाज़ आ रही है—सितारों के आगे जहाँ और भी हैं। "सितारों के आगे या समोसों के आगे ?" शबनमा पूछती है।

"हा हा हा", खुर्शीद हँसकर कहती है, "इन शायरों की नज़र हमेशा सितारों से शुरू होती है। भूख बड़ी ज़हमत है। मगर हमारा हुस्न है ज़िन्दा अब तक इसीलिये कि हम दुनिया को रोटी के ज़ाबिये से देखती हैं, पेट में घुसकर सौदा करती हैं। शरीफ़ आये चाहे बदमाश, हमारे लिए दोनों बराबर हैं। हमें बस अपनी कीमत से ग़र्ज है। रोटी तो चाहिये आख़िर।"

"और जब रोटी नहीं मिलती तो गोया नेकी भी मर जाती है, बदी भी मर जाती है, खुर्शीद !"

"यह तो सच है। फिर न दिन दिन लगता है, न रात रात।"

"फेफड़ों में भी तभी तक सांस चलता है खुर्शीद जब तक आदमी को रोटी मिलती रहती है।"

"सौ सीढ़ियों की एक सीढ़ी है रोटी, शबनमा ! चार दिन की भूख से ही एक-एक रग डाँवा डोल हो जाती है।"

"कोई आसमानी बादशाहत, कोई जन्नत की दुनिया, कोई नजात मुमकिन नहीं, जब तक भूख नहीं मिटती"

शबनमा फिर अपनी कुर्सी पर जा बैठी है वह सोचती है कि रोटी सबसे बड़ी ऐब-पोश है। यह और बात है कि कुछ ऐब खुद इसी के लिए किये जाते हैं। जाड़ा भी बड़े मजे का मौसम है। दिन छोटे रह जाते हैं, काफी छोटे। रातें बड़ी होती जाती हैं। अब भी अगर चकले की आमदनी न बढ़े तो बेचारे जाड़े का क्या कसूर है। जाड़ा आया, हमारे लिए क्या कुछ लाया? नये-नये गाहक लेता आया......काश कि हुस्न के बाजार का हर राही हुस्न का गाहक बनकर ही इधर कदम उठाया करे। उफ, अजब-अजब चेहरे भी नजर आ जाते हैं। गाल देखो तो सिरे से रूखे, सिकुड़े, पिचके, जैसे भुर्ता किये हुए बैंगन। आंखें अन्दर ही अन्दर धँसी जा रही हैं। मगर हमें तो पैसा चाहिये।

शबनमा कांगड़ी में कोयलें सुलगा रही है। दिये में भी उसने तेल डाल दिया। बत्ती उकसा दी है। मुंह धोकर उसने फिर से गालों पर पाउडर की तह जमा ली है, सुर्खी मली है, होंट भी रँग लिये। बालों में फिर से कंघी की है और बाईं ओर की जुल्फ पर एक पुरानी शीशी से मेंहदी के इतर की आखिरी दो बून्दें निकाल कर लगा ली हैं। वह भी रात की किसी दूसरी दुल्हन से कम नहीं। अभी तो वह काफी जवान है। चालीस-बयालीस बरस की उमर भी कुछ उमर होती है। अभी तो बहुत से लोग आ जा रहे हैं गली में। पुराने पापी तो आते ही जरा देर से हैं, दूसरे कामों से पूरी तरह फारिग होकर।

उसे अपने गालों पर किसी के नजर न आनेवाले होंटों का स्पर्श अनुभव हो रहा है। खुदा की दुनिया में आशिकों की क्या कमी है! सारे शहर से अलग यह चकला कितना गरम है।... आदम के बेटे इन रात की दुल्हनों को लताड़ कर दूर निकल

जाते हैं। इन औरतों के पास रह जाता है कुछ-कुछ दुख-दर्द या थकान—या फिर चांदी की गरमी।

दीया टिमटिमाता है। शबनमा का ध्यान न जाने किधर चला गया है। वह मानो सहसा क्षितिज के पार देखने लगती है जहां उसे बादलों के नीचे कीकर और शीशम से घिरे हुए घर नजर आते हैं। यहीं एक तरफ उसे अपना घर भी दिखाई देता है। उसके सामने शहतूत लहलहा रहा है।

जिस दिन वह अपने गांव से भाग खड़ी हुई थी, यह वृक्ष फल से लद रहा था और जब वह भागने से पहले दिन शहतूत खा रही थी तो उसे बार-बार यह ख़याल आया था कि घर से भाग जाना आसान नहीं। इसकी क़लम उसने अपने हाथ से लगाई थी। तीन साल के अरसे में वह खुद भी कितनी ही बदल गई थी। बारहवें साल से तेरहवें साल में पैर रखने के दिन उसका भाई खैरगुल न जाने कहां से इतने मीठे शहतूत की कलम लेते आया था। इसे पानी दे देकर वह हर रोज़ इसके नये-नये पत्ते निकलने का नज़ारा देखा करती। उसका भाई बहुत चाहता कि वह भी कभी इस नन्हें पेड़ को पानी पिलाये! पर शबनमा की इजाज़त के बगैर वह शायद कभी इस पर अपना प्यार न ज़ाहिर कर सका। बड़ा अच्छा भाई था। बहन की चीज़ बहन की ही रहने दी।

इतने बरसों के बाद भी शबनमा को अपना शहतूत भूला नहीं। अब तो यह शहतूत बहुत बुड्ढा हो गया होगा। गिर तो न गया होगा। बड़ी गहरी कलम लगाई थी। आंखें बन्द करते ही उसके सामने शहतूत गांव के किसी अनुभवी बुजुर्ग के समान उभर आता है।

जब वह यह कलम लगा रही थी उसकी माँ ने दुआ की थी—ओ दो आलम के ख़ालिक़! इस शहतूत का खास

ख़याल रखियो, इसकी उमर दराज़ कीजियो।...उसका बाप खिलखिलाकर हँस पड़ा था—अरी पगली! अगर दुआ ही करनी है तो शबनमा के लिए ही कर। यह कह—ओ दो आलम के ख़ालिक़! मेरी बेटी को गाँव की सब लड़कियों में मुमताज़ बना दे।...अपने बाप के मुँह से ये बोल सुनकर शबनमा को बेहद खुशी हुई थी। यह कोई मज़ाक न था। बल्कि उसका तो यह ख़याल था कि उसका बाप की जबान पर ये बोल आने से पहले ही खुदा के हज़ूर में यह दुआ कर चुका था।

मां भी शबनमा को बहुत चाहती थी। कभी-कभी उसे शबनमा के चेहरे की रेखाएँ देखकर अपने पहले पति की याद आ जाती। वह जिन्दा रहता तो अपनी बेटी को देखकर, अपने खैरगुल को देखकर मेरी असल कीमत पहचान लेता। खैरगुल का चेहरा उसके अपने सांचे में ढला हुआ था। पर शबनमा के चेहरे पर उसे ज़रा भी अपना अक्स नज़र न आता था। कई बार वह छिप-छिपकर आईने में अपना चेहरा देखती। फिर इससे शबनमा के पतले से चेहरे का मुक़ाबला करती। खुदा का कारखाना बन्दूकों की दुकान से कितना अलग क़ायदा रखता है, वह सोचती, एक ही फैशन की बन्दूकें चाहे जितनी बनवा लो, खरीद लो। पर खुदा शायद हर बार सांचा बदलता है। एक से एक सूरत नहीं मिलती और फिर यह और भी ग़ज़ब की बात है कि शबनमा बाप का चेहरा पाकर पैदा हो जबकि उससे ढाई-तीन साल पहले खैरगुल मेरा अपना रंग-रूप लेकर आया था।

दस-ग्यारह साल की बेटी माँ को यह राय तो नहीं दे सकती थी कि वह उसके मरहूम बाप की याद के पाकीज़ा चेहरे को नोच कर उसे मक़रूह न बनाये। सच तो यह कि जब पहले दिन माँ ने नये बाप से शबनमा का परिचय कराया, उसे

कभी भूलकर भी यह ख़याल न आया था कि उसकी माँ फिर से जवान होकर पहली याद को किसी नज़र न आनेवाले सन्दूक में बन्द करके उसके नये बाप ही को अपना सब कुछ सौंप देगी। नये बाप ने शबनमा को देखते ही सीने से लगा लिया। माँ बहुत खुश हुई। मेरी औलाद को चाहता है। मुझे तो कभी नहीं ठुकरायेगा ख़ान। इस ख़याल ने उसकी निगाह को रँग दिया। शबनमा ने ख़ान के हाथों में हमदर्दी और बाप की शफ़क़त की गरमी महसूस करके बड़ी तसल्ली महसूस की। खैरगुल बिल्कुल चुप रहा। एक कुर्ता फटकर चिथड़े-चिथड़े होकर गिर गया, नया कुर्ता पहन लिया गया। इसमें क्या बुराई है। माँ तो बहुत समझदार है...शबनमा ने भाई का ख़याल झट भाँप लिया।

प्रतिदिन वह शहतूत बड़ा हो रहा था। उसके नये पत्तों और टहनियों को देखकर शबनमा को यह ध्यान आता कि वे स्वयं भी धरती से रस खींचना सीख गई है और उसकी रगों में केवल लहू नहीं दौड़ता, बल्कि शहतूत के रेशों के समान उसका शरीर भी धरती की सोंधी-सोंधी खुशबू स्वीकार कर रहा रहा है। उसके दिल में भी खेतों की धड़कन पैदा हो जाती है।

ख़ान की नज़र ख़ामख़ाह शबनमा की ओर उठ जाती। वह शायद उसे उसी अन्दाज़ से देखता जिससे वह अपने हाथ से लगाये शहतूत को देखती थी। ठीक तो था, शबनमा शहतूत की कोंपलों को छूकर देख सकती थी और आज़ाद इलाके का पठान अपनी नई बीबी की शरीफ़ बेटी को, जो असल में उसकी अपनी औलाद न थी, पंजाबियों की तरह 'पिछोतरी' कहकर नफ़रत की नज़र से नहीं देख सकता था। बल्कि वह उस पर हाथ फेरना ज़रूरी समझता, जैसे वह उसकी अपनी बेटी हो। अपनी दो तो थी। फ़र्क़ तो तब पड़ता है जब दिल में कुफ्र भर

जाय । शबनमा की माँ—मेरी बीबी, शबनमा—मेरी बेटी ।

शहतूत का तना मोटा हो रहा था । टहनियां भी गदराई हुई-सी नजर आती थीं । तने को छूते ही शबनमा सोचती कि इस नये घर में आये पहला साल बीत गया, दूसरा बीत गया और तीसरा भी पूरा होने को है । खुदा का कितना बड़ा फजल है । कितना मीठा फल पैदा किया है उसने ।

माँ समझाती—शबनमा बेटी, इतने शहतूत न खाया कर ।

ख़ान कहता—हर्ज ही क्या है ? यह तो खुदा का फल है ।

खैरगुल चुप रहता ।

शबनमा खैरगुल के लिए बहुत से शहतूत जमाकर रखती । वह एक न छोड़ता । भाई हो तो ऐसा जो बोले चाहे कम, पर बहन की मामूली से मामूली भेंट को भी कबूल कर ले ।

ख़ान कहता—शबनमा ! मुझे भी मिलना चाहिये मेरा हिस्सा ।

माँ कहती—टिक के बैठ बेटी । ख़ान नहीं खायगा शहतूत ।

शबनमा यह न समझ सकती कि जब भी ख़ान शहतूत की मांग करता है उसकी माँ झट उसकी जबान क्यों बन्द कर देती है ।

इस बीच में शबनमा दो नये भाई खो बैठी थी । वे जिन्दा रहते तो शायद उसका प्यार बट जाता । अब खैरगुल के लिए उसका दिल और भी विशाल हो गया । भाई हो तो ऐसा । खैरगुल कितना प्यारा भाई है । होंगे और लड़कियों के भाई, खैरगुल से मुकाबला ही क्या किसी का । वह बन्दूक जो उसे मरहूम बाप ने लाकर दी थी अब तक उसने सँभाल कर रख छोड़ी है ।

और दो बेटों को खोकर ख़ान ने समझ लिया अब खैरगुल

ही उसका बेटा है। शबनमा का भी वह बहुत ध्यान रखता। पेशावर से वह उसके लिये जापानी सिल्क की कमीज, सलवार तीन-चार जोड़े सिला लाया था। कानों के लिये रोल्डगोल्ड के कांटें लेता आया था। आज हरी कमीज़, सलवार पहन ले, शबनमा! आज नीले रंग की पहनना। आज लाल रंग की। शबनमा को बहुत घबराहट होती। कपड़े क्या लाये अब्बा जान, तूफान खड़ा कर दिया। आज यह पहनो, आज वह। अच्छा होता कि लाये ही न होते। पर वह खान का दिल रखना भी ज़रूरी समझती। कांटे तो वह कभी उतारती ही न थी। ये उसे खुद भी पसन्द थे। माँ लाख रोकती कि हर-रोज़ कपड़े बदलने की ज़रूरत नहीं, पर शबनमा हर बात में माँ के हुक्म को ही तरजीह न दे सकती। पर खान की इन फ़रमाइशों को वह भी हैरानी से देखती।

शबनमा कुछ ही दिनों में बहुत लम्बी हो गई थी, जैसे रात ही रात में सरसों का डंठल उठ जाय। बाल तो कमर को छू रहे थे। ये कैसे बढ़ते रहते हैं? कुदरत की कोई ताकत चर्खा कातती रहती है। इस दिखाई न देनेवाले चर्खे का कलाकार शबनमा पर बहुत खुश नजर आता था। होंट भी गुदगुदे होते जा रहे थे। सीना भी भर चुका था। सपाट जगह पर उभार आ गया था।

पहले कभी उसने आईने में अपना रूप देखकर इतनी खुशी महसूस न की थी। ख़ान उसके लिए रोल्डगोल्ड के कांटे न ले आया होता तो शायद उसे इसका ध्यान ही न आया होता। ये काँटे यों हिलते थे जैसे टहनियों पर शहतूत झूम रहे हों। आईना देखते-देखते वह मुस्कराती, शर्मा-सी जाती।

मरहूम बाप की याद शबनमा को अब इतनी न आती। बाप होना चाहिये, पुराना हो या नया। ख़ान को उसने अपने

वास्तविक पिता का स्थान दे दिया। पर जब खान उसकी पीठ पर हाथ फेरता और 'मेरी शबनमा, मेरी शबनमा!' की रट लगना शुरू कर देता तो वह घबरा-सी जाती। वह उसे अपने सीने से लगा लेता। वह उसका नया बाप था, पर उसकी मां को खान की यह बात पसन्द न थी। उसने उसे कई बार टोका भी, पर वह कोई पेश न जाने देता। शबनमा किसी और मां की बेटी तो नहीं। शबनमा की मां—मेरी बीबी, शबनमा—मेरी बेटी। वह हार मान लेती। खान एक बार फिर शबनमा की पीठ पर हाथ फेरता और सच्चे दिल से उसे सहलाता।

एक दिन शबनमा की मां चारसद्दे के पास एक गांव में गई, जहां उसकी बड़ी बहन रहती थी। शबनमा घर में अकेली थी। खान बाहर से आया तो वह चुप-सा दिखाई दे रहा था। फिर उसकी आंखों में एक अजब-सी वहशत आती गई। शबनमा सहम गई। वह एक शिकारी के समान नजर आता था जो किसी ठूंठ पर बैठा किसी भूली-भटकी चिड़िया की बेखबरी की बाट जोह रहा हो। शबनमा अपना काम करती रही। जल्दी से आना, शबनमा! कोठे के अन्दर से खान की आवाज़ आई।

शबनमा खान के समीप जा खड़ी हुई तो वह बोला—आज वह सदरी कहां गई? वह सितारोंवाली, सौ बटनों वाली सदरी जो तेरे सीने...सीने के सुलेमानों की अज़मत बढ़ाती है—वह सदरी—

शबनमा क्या जवाब देती! वह घबरा गई, जैसे किसी ने फाख्ता के सीने पर घूंसा दे मारा हो। उसके शरीर का सारा लहू मुंह को आने लगा। खान ने पहले के समान उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसकी ओर मुस्करा कर देखा—शबनमा, मेरी शबनमा! इन आंखों में यह मैली-सी मुस्कराहट देखकर

शबनमा का दिल ज़ोर-ज़ोर से धक-धक करने लगा। आंखों में धुंआ-सा पैदा हुआ। माथे पर मानो चींटियां रेंगने लगीं। पहले उसका खून कभी इतना गरम न हुआ था।

ख़ान उसे अपने सीने से लगा चुका था और ज्यों ही उसका हाथ बेबाक होकर आगे बढ़ा, जैसे कोई शरारती बच्चा कहीं कोई खूबसूरत खिलौना देखकर ललचा उठे, वह उचक कर परे जा खड़ी हुई। बोली—हां, तो आप उस सदरी के लिए कह रहे थे। मैं अभी पहन आती हूँ। और ख़ान जो सालन में सुर्ख मिर्च को हमेशा पसन्द करता था, बोला—हां, जाओ। पहन आओ।

शबनमा उचक कर चली गई और फिर वह पीछे से दीवार फांदकर पड़ोसियों के ज़नानखाने में जा पहुंची।

शाम को मां वापस आ गई। खैरगुल उसके साथ था। ख़ाला के यहां से वह बहुत-सी चीजें लाया था। ख़ालू ने उस दिन किसी त्यौहार पर चार बकरे हलाल किये थे। एक पूरे बकरे का गोश्त खैरगुल को दे दिया गया था जिसे उसने सिर पर उठा रखा था। शबनमा उनकी खबर पाकर सहमी हुई घर आ गई। खान का नशा अबतक हिरन हो चुका था। अजब मुजरिमाना आंखों से वह शबनमा की ओर देखता रहा। ख़ान की दस्तदराज़ी मां को कैसे बताये, शबनमा को यही उलझन थी। खैरगुल के गुस्से से वह वाक़िफ़ थी। उसे भी न बता सकी। उसे तो ज़रा-सा इशारा ही काफ़ी था, बदला लेकर छोड़ता। और क्या खर्बर ख़ान के अलावा वह मां को भी मार डालता जो ऐसे आदमी की बीबी बन गई थी।

इस घटना के बाद खान की आंखें खुल जायँगी, यह सोचकर शबनमा को कुछ-कुछ तसल्ली हो गई। पर ख़ान की ज़बान आदत से बाज़ न आई। शबनमा, मेरी अपनी शबनमा!—वह कह

उठता। उसके हाथ उसकी पीठ पर आ टिकते। वह उसे सहलाने लगता।

शबनमा का लहू बार-बार गरम हो जाता और मुंह की ओर ज़ोर मारता। वह घबरा कर बैठ जाती। ज़बान पर जैसे किसी ने टांका लगा दिया था। आखिर उसने छोटी ख़ाला के यहां, जो पेशावर में थी, भाग जाने का फ़ैसला कर लिया। इस शहतूत के नीचे खड़े होकर उसने मन ही मन में सात बार यह बोल दुहराया—अब और न रहूँगी इस घर में। और वहीं खड़े खड़े उसने रोल्डगोल्ड के कांटे उतार कर शहतूत की जड़ के समीप दफ़न कर दिये। मां तो आ ही सकेगी पेशावर और खैरगुल भी—अब और न रहूँगी इस घर में......

उसकी ख़ाला मकान बदल चुकी थी। नये मकान का पता न चल सका। वह उसी जगह, जहां पहले उसकी ख़ाला रहा करती थी, ठहर गई। यह कोई मेहरबान औरत थी। शबनमा की कहानी सुनकर उसका दिल पसीज गया। काम-धन्धा कर दिया करे तो रोटी मिलती रहा करेगी उसे। ऐसे ही सही। शबनमा काम में लग गई। पर जिस आग से भाग कर इतनी दूर पेशावर में आई थी, वह तो कहीं भी किसी दिल में सुलग सकती थी। यही हुआ भी। मकानवालों का बड़ा लड़का उसे दिक करने लगा......

इसके बाद जहां भी गई, उसे यही मुसीबत पेश आई। ओ दो आलम के वाली! अब मैं किधर जाऊँ? बार-बार यह प्रश्न उसके होटों पर आया। खुदा हर बार चुप रहा। आसमान पर, बादलों के टुकड़ों पर भटक-भटक कर उसकी निगाहें फिर ज़मीन को टटोलने लगतीं। ज़मीन का कुछ विश्वास न था, जगह-जगह भयानक ज़हरी नाग फुंकार उठते थे। किस-किस बाबी से बच सकती है—एक कच्ची कुंवारी लड़की। ओ ज़मीन

और आसमा के बादशाह?...

आखिर एक औरत ने उसकी ढारस बँधाई। उसने मां से भी अधिक प्यार प्रकट किया। शबनमा उसी के साथ रहने लगी। कुछ दिन बाद उसने उसे शहर की एक बुढ़िया के हाथ बेच दिया। बाद में पता चला कि उसने पांच सौ रुपये खरे कर लिये थे......इसके बाद उसने कई बार भाग जाना चाहा, पर दवाव कुछ बुरी तरह पड़ा था। यहां तक कि वह बुढ़िया भी एक दिन मोटर के नीचे दब कर मर गई। पर एक बार ठिकाने से भागी हुई औरत आजतक वापस न लौट सकी.......

शबनमा के दिल में अब तक खैरगुल का खयाल बाकी है। भाई हो तो ऐसा। शहतूत को देखकर तो उसे भी मेरा ध्यान आ जाता होगा। शहतूत तो अब भी पकते होंगे, अब भी झूलते होंगे शहतूत टहनियों पर, जैसे मेरे कानों में रोल्डगोल्ड के कांटे हिलते रहते थे। वे कांटे जो शहतूत की जड़ के पास दफ़न होंगे और जिन्हें अब तक जमीन ने कबूल न किया होगा, उन्हें अपना रूप न दिया होगा!......पर वह घर से क्यों भाग निकली थी? खान उसे खा थोड़े ही जाता? खैरगुल जो था—मां-जाया, एक ही बाप का बेटा। भाई-बहिन, बल्कि मां भी कहीं और ठिकाना बना लेते या शायद यह नौबत ही न आती। तीनों मिलकर खान को कान से पकड़ कर सीधा कर देते। खैरगुल उसका बाल बांका न होने देता। और यदि मुनासिब होता तो झट कहीं कोई अच्छा-सा दूल्हा तैयार कर देता। बारात आती, बाजे बजते और आज यह हाल न होता। आज वह मां होती, और एक अच्छी बीबी भी। किसी पर उसका जोर होता, जमीन के किसी टुकड़े पर उसका हक होता।

खुर्शीद पूछती है—"चुप क्यों हो गई शबनमा। मैं तो कभी इतनी सुस्त नहीं हुई समोसे खाने के बाद।"

"सुस्ती-वुस्ती कुछ नहीं। यों ही दिल ही तो है, भटकने लगता है इधर से उधर, उधर से इधर।"

किराये के ख़याल से शबनमा का तन-बदन फुंक रहा है। बड़ी मुश्किल से छः रुपये जोड़े थे। अब एक और चाहिये, ज़रूर चाहिये, नहीं तो वह पूरबिया लठैत जाने क्या कर गुज़रे। ऊपर से वह खुर्शीद से बोल लेती है कभी-कभी और ख़ैरगुल के सम्बन्ध में सोचने लगती है।

एक अधेड़ उमर का सरदार, गुलूबन्द से खुद ही फांसी लगाये, खुर्शीद के दरवाजे पर आता है। प्रतिदिन के समान इशारों में बातें होती हैं, सौदा चुकता है और खुर्शीद उसे साथ लिये अन्दर चली जाती है।

सुनसान रात जिसका आखिरी गाहक सामने के कमरे में जा चुका है, शबनमा को निगलती दिखाई देती है। कितनी खुशक़िस्मत है यह खुर्शीद, पाँच नहीं तो ढाई तो ले ही मरेगी।

काश, वह एक रुपया मुझे दे दे उधार। कम से कम पूरबिये लठैत से तो जान छूटे। और कुछ न कुछ रोटी के लिये भी तो चाहिये। असली बरकत तो अपनी ही कमाई से होती है। पर एक रुपया तो मैं ज़रूर मांग देखूंगी। यह बुखार तो नहीं सहा जाता और!...रात अपने अनगिनत तारों की आंखें झपकाती हुई गुज़रती जाती है। चांद का चेहरा जाने क्यों फीका पड़ गया है, उदास हो गया है। शबनमा का कोई खरीदार पैदा नहीं होता। क्या सिर्फ औरतें ही बूढ़ी होती हैं दुनियां में? मर्द बूढ़े नहीं होते? पर बूढ़े मर्दों को भी जवान औरतों की ही तलाश क्यों रहती है? उस पूरबिया के सामने रुपया पैदा न कर सकी तो बुरा हाल होगा और यही हालत रही तो किराया सिर पर बढ़ता चला जायगा। और मुझे यहाँ से उठा दिया जायगा। ओ मेरे अल्लाह! तू क्यों नहीं देखता मेरी ग़रीबी,

मेरी यह भूख ? कैसे दिन आने वाले हैं, मेरे अल्लाह ? इस वक्त चाहे तू कुछ जवाब न दे, कुछ खबर न ले, तू जरूर मेरे हाल पर मेहरबान होगा। आखिर तू अल्लाह जो हुआ। पर तू चुप क्यों है, मेरे अल्लाह ? कहीं बहरा तो नहीं हो गया, गूंगा तो नहीं हो गया है, मेरे अल्लाह ? जरूरत तो सिर पर आन पहुँची है। कल ही तो पूरा रुपया, पौने सोलह आने भी नहीं, पैदा करना होगा...अगर मुझे यहां से उठा दिया जाय, तो मुझे कहां ठिकाना मिल सकता है ? भीख मांगती फिरूंगी क्या ? वहाँ सड़क पर जहाँ दरबार के सामने उर्स लगा करता है, चक्कर काटा करूंगी क्या ? वहाँ जहाँ एक औरत पड़ी रहती है भिनभिनाती वदबूदार मक्खियों के बीच ! शायद वह किसी खोली से ही मेरी तरह मजबूर रोकर उठ गई होगी। क्या इस जगह यही बुढ़ापे का अंजाम होता है।

दीये की लौ थरथरा रही है। शबनमा उठ कर दीये में थोड़ा तेल और डाल देती है। बत्ती को भी उकसा देती है। लौ नये अमीर की तरह भड़कती है। परछाइयां थिरकने लगती हैं। बेकार लालच की तरह हवा का झोंका आता है। दीया बुझते-बुझते बच जाता है।

शबनमा को पता चलता है कि वह सरदार रात का आखिरी दूल्हा नहीं था। दूर गली में एक कोने से एक लड़खड़ाता हुआ आदमी प्रकट होता है। शबनमा का दिल फड़कने लगता है। दाईं तरफ, बांई तरफ—सब दरवाजे बन्द हैं। बत्तियां बुझाई जा चुकी हैं। उम्मीद के दीये के समान केवल उसका अपना ही दीया टिमटिमा रहा है।

वह मर्द शराब से लड़खड़ाता हुआ आता है। पगड़ी खुलकर उसके गले में पड़ी है। नशे ने उसे अन्धा कर रखा है। बूढ़ी औरत और जवान औरत में वह कोई तमीज़ नहीं कर सकता,

भाड़ा चुकाने के लिए वह आगे आता है।

शबनमा चौंक पड़ती है, पीछे हट जाती है। परे ताक में दीये की लौ भड़कती है, थिरकती है। शबनमा की आंखों में धूंआ-सा पैदा हो जाता है। उसका बस चले कहीं भाग जाय, छुप जाय। कमरे का फर्श ही फट जाय और हो सके तो वह उसमें समा जाय।

शबनमा बड़े ध्यान से इस शराबी की ओर देखती है। एक बार फिर उसके दिमाग में खैरगुल की बड़े डीलडौलवाली शकल घूम जाती है। खैरगुल और इस नौजवान में बाल भर का भी फर्क नहीं है। उस दिन जब वह खालू के यहाँ से पूरे बकरे का गोश्त लेकर आया था, उसके चेहरे पर ऐसी ही कुछ मस्ती-सी छाई हुई थी। वही छोटी-छोटी मूंछें, घनी पलकें, गहरी आंखें और गोश्त से भरे हुए गाल—वह पेशानी तक आया हुआ बालों का एक गुच्छा।

शबनमा सोचती है कि मां ने उसका नाम किस कदर सोच कर रखा था—शबनमा !...शबनमा सवेरे ही जमीन पर ज़ाहिर होती है और फिर सुबह-सुबह सूरज की किरणें उसे पी जाती हैं। पर शायद मां के खयाल में यही था कि मेरी शबनमा सवेरे की ही शबनम रहेगी। काश वह आकर देखती की उस की शबनमा रात को ज़ाहिर होती है और रात खतम होने से पहले-पहले रात का अथाह अँधेरा उसे अपने गले में उड़ेल लेता है।

फिर एक नज़र से वह बन्द दरवाजों की ओर देखती है और नौजवान को बाहर धकेलते हुए झट से दरवाज़ा बन्द कर लेती है। वह भिनभिनाती हुई मक्खियोंवाली बुढ़िया की कल्पना मन में लिए थके हाल अपनी खाट पर गिर पड़ती है।